आदर्श जीवन की प्रायोगिक क्रियायें

लेखक
उपाध्याय कनकनन्दी

आदर्श जीवन
की
प्रायोगिक क्रियायें

लेखक
उपाध्याय कनकनन्दी

धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन ग्रन्थांक = 77

''आदर्श जीवन की प्रायोगिक क्रियाऐं''

लेखक	- श्री उपाध्याय कनकनन्दी गुरूदेव।
आशीर्वाद	- श्री गणधराचार्य कुन्थुसागर जी गुरूदेव।
सहयोग	- मुनि श्री कुमार विद्यानंदी, मुनि श्री गुप्तिनंदी जी आर्यिका राज श्री, आर्यिका क्षमा श्री।
सम्पादक मण्डल	- श्री प्रभात कुमार जैन(एम.एस.सी. रसायनप्रवक्ता) मुजफ्फर नगर श्री रधुवीर सिंह (एम.एस.सी.एल.बी.) (मु.न.) श्री सुशील चन्द जैन (एम.एस. सी.भौतिकी)(बड़ौत)
कार्याध्यक्ष	- श्री भँवर लाल पटवारी (बिजौलियाँ)राजस्थान
मंत्री	- श्री गुणपाल जैन (मुजफ्फर नगर)
प्रकाशन संयोजक	- श्री नेमी चन्द काला (जयपुर) राजस्थान
द्रव्यदाता	- श्री सुरेन्द्र कुमार गोधा पुत्र श्री चौथमल गोधा सांगोद (कोटा) (दू.भा.4247)
सर्वाधिकार	- सुरक्षित लेखकाधिन
प्रथम संस्करण	- सितम्बर, 1995
मूल्य	- रू. 5/-
प्रतियाँ	- 1001
प्रकाशन एवं	- 1 धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन बड़ौत मुजफ्फरनगर (यू.पी.)
प्राप्ति स्थान	- 2 नव अल्पना प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स मोदीखाना, जयपुर-3 (राज.)
मुद्रण	- नव अल्पना प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, जयपुर-3 द्वारा

आमुख

जीवन को समुन्नत, समुज्ज्वल, आदर्श, सुखमय बनाने के लिये सजग श्रद्धा, प्रखर-प्रज्ञा एवं आदर्श-चारित्र की केवल नितांत आवश्यकता ही नहीं परन्तु सर्वदा अनिवार्यता ही है। यह व्यक्तिगत आदर्श जीवन ही परिवार, ग्राम, समाज, राष्ट्र तथा विश्व आदर्श की आधार शिला है। क्योंकि व्यक्ति ही उपर्युक्त समस्त समूह की प्रथम एवं प्रधान इकाई है। वर्तमान युग एक संक्रमण एवं क्रान्तिकारी युग है। व्यक्ति में बौद्धिक विकास, उदार - विचार , समन्वय की प्रवृत्ति की तो वृद्धि हुई है परन्तु साथ साथ पाश्चात्य अन्धानुकरण, फैशन-प्रियता, परावलम्बन, व्यसन- जीवन पद्धति की भी वृद्धि हुई है। इस संक्रमण की अवस्था में यदि समुचित मार्गदर्शन नहीं मिलेगा, तो मानव विकास के परिवर्तन में विनाश हो जायेगा। अखिल विश्व-मानव को मार्ग दर्शन मिले इस भावना को लेकर श्री सुरेन्द्र कुमार गोधा (सागोद) जि. कोटा नामक एक सज्जन ने मुझे रात्रि की वैयावृत्ति के समय में अनुरोध किया कि गुरूदेव मुझे आप की एक पुस्तक प्रकाशन के लिये दीजिये, जिसमें एक आदर्श व्यक्ति के सम्पूर्ण कर्त्तव्य संक्षिप्त में वर्णन हो। उनकी भावना एवं सम्पत्ति के कारण यह कृति आप लोगों को मार्ग दर्शन के लिये प्रस्तुत है। इसके कार्य में मेरी धार्मिक शिष्या-

कु. रविप्रभा जैन **कु. प्रिया जैन**

कु. नीलम जैन **कु. प्रियंका जैन**

का योगदान रहा है। द्रव्यदाता, धर्म दर्शन विज्ञान प्रकाशन के कार्यकर्त्ता नेमी चन्द काला आदि तथा सहायक कर्त्ताओं को मेरा शुभाशीर्वाद। सर्व मानव इस कृति का अध्ययन करके जीवन को आदर्श बनावें, ऐसी महति भावना के साथ-

उपाध्याय कनकनन्दी

परिच्छेद -1

''आदर्श जीवन''

व्यक्ति को प्रात:काल दायें करवट को ऊपर करके प्रभु का स्मरण करते हुये उठना चाहिये। पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके पद्मासनादि में बैठकर अंजुली को जोड़ना चाहिये। अंजुली में सिद्ध शिला की स्थापना करके सिद्ध भगवान का ध्यान तथा पंच परमेष्टी का ध्यान करना चाहिये। णमोकार मंत्र या कोई उत्तम मंत्र का जाप 9 या 27 अथवा 108 बार जाप करना चाहिये।माता पितादि अभिभावकों के पैर छूकर प्रणाम (जय जिनेन्द्र) करना चाहिये। अन्य का भी यथायोग्य अभिवादन, सम्मान (हाथ जोड़कर जय जिनेन्द्र) करना चाहिये। शौच क्रिया करके छने हुये जल से मिट्टी से गुदा स्थान,मल द्वार, हाथ, पैर तीन तीन बार धोना चाहिये। दातौन से दांत शुद्ध करना चाहिये। जिह्वा को भी साफ करना चाहिये। अच्छी तरह कुल्ला करना चाहिये। पूजादि के लिये छने हुए जल से स्नान करना चाहिये। क्योंकि बिना छने जल में सूक्ष्म जीव होते हैं। स्नान में हिंसात्मक साबुनादि का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

स्नान के बाद शुद्ध वस्त्र पहन कर मंदिर जाना चाहिये। साथ में कुछ न कुछ शुद्ध पूजा- द्रव्य लेकर जाना चाहिये। देव दर्शन परिच्छेद में वर्णित विधि के अनुसार देव दर्शन , पूजादि करना चाहिये। भगवान के सामने पांच मुष्ठि(पुंज) चांवल चढाकर गवासन में बैठकर नमस्कार करना चाहिये। णमो अरिहंताणं बोलकर मध्य में पहला पुंज, णमो सिद्धाणं बोलकर उपर में पुंज, णमो आइरियाणं बोलकर दायें में पुंज, णमो उवज्झायणा बोलकर नीचे में पुंज, णमो लोए सव्व साहूण बोलकर बायें में पुंज चढ़ाना चाहिये।

साधु के सामने सम्यग्दर्शनाय नम: सम्यग्ज्ञानाय नम:, सम्यग्चारित्राय नम: बोलकर क्रम से 3 पुंज चढ़ाना चाहिये। जिनवाणी के सामने क्रमश: प्रथमानुयोगाय नम:, करणानुयोगाय नम:, चरणानुयोगाय नम:, द्रव्यानुयोगाय नम: बोलकर चार पुँजअक्षत चढ़ाना चाहिये। मन्दिर में धार्मिक चर्चा को छोड़कर अन्य चर्चा न करें।

देव दर्शन के बाद विनय से विधि के अनुसार शास्त्र स्वाध्याय करना

चाहिये। शास्त्र के मध्य से कोई पृष्ट निकाल कर यद्वातद्वा पढ़ना नहीं चाहिये। सच्चे गुरु को नमोस्तु कहकर गवासन में बैठकर प्रणाम करना चाहिये। बैठते समय मृदु वस्त्र से जीवों की रक्षा करते हुए बैठना चाहिये। आर्यिका को वन्दामि कहकर प्रणाम उपरोक्त विधि से करना चाहिये। ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका को इच्छामि कहकर प्रणाम करें। ब्रह्मचारी को वंदना कहकर प्रणाम करें। अन्य सामान्य व्यक्तियों को जय जिनेन्द्र कहकर यथायोग्य सम्मान करें। पूजादि करके मुनि आदि को भक्ति से विधिपूर्वक आहारादि देवें। आहार दान विधि के अनुसार दें। गृहपालित पशु, सेवक, वृद्ध, माता, पिता, रोगी, दुखित को भोजनादि देकर स्वयं भोजन करे।

भोजन शुद्ध सात्विक, ताजा प्रासुक(मर्यादित) होना चाहिये। भोजन भूख लगने पर ही दिन में योग्य समय में सूर्य के पर्याप्त प्रकाश में करें। स्वच्छता से हाथ, पैर मुँह धोकर कुल्ला कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके मन को शांत करके मौन पूर्वक प्रशस्त स्थान में भोजन करें। भात रोटी आदि खाद्य को पीना चाहिये एवं पानी आदि पानीय को खाना चाहिये अर्थात ठोस चीज को इतना चबाना चाहिये जिससे भोजन पानी के जैसे पीने में आवे एवं पानी को धीरे धीरे पीना चाहिये। भोजन को 32 दांत की संख्या के बराबर चबाना चाहिये। पहले थोडा सा पानी (आचमन) पीना चाहिये। उसके बाद मीठा ठोस भोजन करना चाहिये। मध्य में नमकीन आदि भोजन करना चाहिये। मध्य-मध्य में थोड़ा पानी पीना चाहिये। पहले या अंत में ज्यादा पानी नहीं पीना चाहिये। विपरीत रस का सेवन नहीं करना चाहिये। जैसे- दूध के साथ या ठीक पहले या बाद में खट्टा रस, फल या फलरस के बाद पानी, शीतल भोजन या पानी के बाद गरम या गरम के बाद शीतल भोजन या पानी। भोजन के अंत में इलायची सौंफ, लोंग का सेवन करना चाहिये। किन्तु धुम्रपानादि नहीं करना चाहिये।

भोजन के बाद हाथ, पैर, मुंह अच्छी तरह से धोना चाहिये। भोजन के बाद हाथ को धोकर तथा हाथ को परस्पर में रगड़ कर दोनों आंख के ऊपर धीरे धीरे से हाथ रगड़ना चाहिये। इससे दृष्टि शक्ति, इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है एवं रोग नहीं होता है। भोजन के बाद प्रभु स्मरण करके उठना चाहिये। शांत गंभीर मुद्रा में कुछ समय बैठना चाहिये इसके अन्नतर 100 कदम धीरे धीरे चलना चाहिये। भोजन के बाद मूत्रत्याग (पेशाब) करना चाहिये। भोजन

के बाद कठिन कार्य, तेल मालिश, स्नानादि नहीं करना चाहिये। अन्नतर चित्त होकर (सीधे लेटकर) 9, दायें करवट 18 एवं बायें करवट 27 श्वासोच्छवास प्रमाण काल विश्राम करना चाहिये। विश्राम के बाद योग्य अध्ययन, ध्यान,चर्चा, लेखन , मनन, परोपकारादि कार्य करना चाहिये। ग्रहस्थ हो तो धर्मानुसार न्यायोचित मार्ग से अपना गृहस्थ, व्यापारादि कार्य करना चाहिये। यदि गृहस्थ के व्यापारादि कार्य अन्याय पूर्ण उपाय से करते है तो अन्य मंदिरादि के धार्मिक कार्य केवल बाह्याडम्बर, ढ़ोंग, रुढ़ी रह जाता है। धर्म तो सदा,सर्वदा, सर्वत्र धारण करने योग्य है न कि केवल मंदिर में। मंदिर तों धर्मालय है जैसे- विद्यालय। विद्यालय में विद्या नहीं होती वहां जाकर विद्या अध्ययन करते हैं एवं जीवन में उतारते हैं। वैसे ही धर्मालय में जाकर धर्म-अध्ययन करना है एवं जीवन के हर क्षण में हर कार्य में उतारना है।

पूर्ण जीवन का, वर्ष का, दिन का, घंटा का तथा प्रतिक्षण का उद्देश्य एंव कार्यक्रम होना चाहिये। जीवन का सर्वोपरि अंतिम लक्ष्य शाश्वतिक सुख, अनंतज्ञानादि ही होना चाहिये। उसको ही केन्द्र बिन्दु करके प्रत्येक कार्य होना चाहिये। निरुद्देश्य गमन केवल भटकाव है।

व्यर्थ में समय, शक्ति, ज्ञान , धन, साधनादि का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। शक्ति के दुरुपयोग से विनाश है तो सदुपयोग से विकास। हर समय स्वयं को पवित्र, उदार, उदात्त कार्य में संलग्न रखना चाहिये। क्योंकि खाली मस्तिष्क भूतों का डेरा बन जाता है। किसी की भी बात को या किसी भी विषय को बिना विचार किये, बिना निर्णय किये न स्वीकार करना चाहिये, न निंदा, प्रशंसा करना चाहिये। संशय से विनाश होता है परन्तु बिना परीक्षण, निरीक्षण के विश्वास करने से भी विनाश होता है। संसार के अधिकांश प्राणि अधिकांशत: स्वार्थी, मोही, अज्ञानी, अन्धविश्वासी, रुढ़ीवादी, लौकिकाचारी होते हैं। अत: सावधानी से, साम्यभाव से, साक्षीभाव से (तटस्थ भाव से) कार्य करना चाहिये। स्वयं यदि सत्यमार्ग में चल रहें हैं तो दूसरों से अप्रभावित होना चाहिये। दूसरों से प्रभावित होकर सत्य मार्ग का त्याग नहीं करना चाहिये क्योंकि सत्य ही सार्वभौम, सर्वशक्तिवान है।

प्रत्येक समय आत्म विश्लेषण, आत्म अन्वेषण, आत्मपरिशोधन, करना चाहिये। भावों को लचीला, अभंगुर, निर्मल रखना चाहिये। दोष का

परिज्ञान होते ही त्याग करने तथा गुणग्रहण का पुरुषार्थ करना चाहिये। छोटे से भी स्वकर्त्तव्य को समग्रता से , उत्तम विधि से करना चाहिये। वर्तमान का कर्त्तव्य अगले क्षण के लिये नहीं छोड़ना चाहिये।

जीवन को सदाचार, सत् विश्वास, सम्यक ज्ञान, तेजस्वी व्यक्तित्व, समयानुबध्द, अनुशाषित, कर्त्तव्यनिष्ठ, सत्यग्राही, निर्भय, निर्द्वन्द, निश्चल, निर्मल, सरल- सहज आदि गुणों से समुन्नत महिमा मण्डित गौरवपूर्ण बनाना चाहिये। जो व्यवहार स्वयं के लिये उचित न लगे, वह व्यवहार दूसरों के लिये भी न करें। स्व उपकार के साथ साथ दूसरों के लिये भी उपकार करें। यदि दूसरों का उपकार नहीं बन पा रहा है तो कम से कम अपकार नहीं करना चाहिये। प्यासा को संभव हो तो पानी पिलाओ, नहीं तो कम से कम विष तो मत पिलाओ।

कुछ क्षण भी प्रकाश देने वाला दीपक, उस दीपक से श्रेष्ठ है जो चिरकाल तक केवल धुंआ देता है। वेसे ही प्रकाशमय छोटा सा जीवन भी, उस जीवन से श्रेष्ठ है जो केवल पाप का धुंआ फैलाता रहता है। अत: प्रत्येक प्राणी को आत्म दीपक एवं पर दीपक बनना चाहिये।

रात्रि को प्रभु स्मरण आत्मरमण पूर्वक पूर्व दक्षिण या पश्चिम दिशा की ओर सिर करके स्वच्छ जीवों से रहित स्थान में विश्राम के लिये शयन करना चाहिये। शय्या समतल होनी चाहिये। शयन के पूर्व हाथ पैर मुंह धोकर शयन करना चाहिए। जब तक निद्रा नहीं आती है तब तक सत् चिन्तन करना चाहिये। इससे निद्रा अच्छी आती है दु: स्वपन नहीं आते हैं। बायें करवट सोना चाहिये। सोते समय शरीर पर कसे हुये वस्त्र नहीं होना चाहिये तथा मुंह को पूर्ण ऊपर तक वस्त्र से ढांक कर नहीं सोंना चाहिये।

उपरोक्त विधि से दैनिक कार्य करने वाला सुखमय जीवन यापन करता है।

नोट :- विशेष जिज्ञासु मेरी (कनकनंदी) ''आदर्श विचार, विहार-आहार'' पुस्तक का अवलोकन करें।

हमारा संकल्प (हमारी प्रतिज्ञा)

हम सत्-विश्वास, सच्चा विज्ञान एंव सत् चारित्र के बल पर

अन्धविश्वास मिथ्या ज्ञान एंव भ्रष्टाचार का विनाश करते हुये स्वपर राष्ट्र विश्व का विकास करते हुये विश्व को पवित्रमय एंव शान्तिपूर्ण बनाना है। विश्व हमारा परिवार है जिनेन्द्र भगवान हमारे पिता है जिनवाणी हमारी माता है एंव सम्पूर्ण प्राणी हमारे बन्धु हैं। अत: सबकी सेवा, सबकी रक्षा एंव सबकी समृध्दि हमारा लक्ष्य हमारा कर्त्तव्य एंव हमारा धर्म है।

जय जिनेन्द्र 3, जय जिनवाणी 3, जय गुरूदेव 3, जय जिनवरं 3।

देवदर्शन विधि

पूजक को प्रात: ब्रह्ममुहूर्त में निद्रा त्यागकर शौचादि से निवृत्त होकर शुद्ध छने जल से शारीरिक शुद्धि करके शुद्ध वस्त्र परिधान (पहनना)धारण करना चाहिये। स्वग्रह से स्व-शक्त्यादी के अनुसार शुद्ध प्रासुक जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फलादि, यथायोग्य अष्ट द्रव्य लेकर जीवों की रक्षा करते हुये ईर्यापथ शुद्धि से पूज्य पुरुष के गुणकीर्तन, प्रार्थना, स्तुति, वन्दना, आदि करते हुये मन्दिर की ओर जाना चाहिये। मन्दिर के द्वार में प्रवेश करते हूये ॐ जय! जय ! जय! नि: सहि! नि: सहि! नि:सहि! नमोस्तु! नमोस्तु!नमोस्तु!भावपूर्वक बोलना चाहिये। जब पहले पूजा के लिये घर त्याग किया जाता था तब उस समय द्रव्य रुप से एवं भाव रूप से सांसारिक समस्त आरम्भ, परिग्रह आदि का त्याग करके मन्दिर की ओर प्रयाण करना चाहिये। मन्दिर के द्वार पर प्रवेश करते हुये उपरोक्त जय एवं नि:सहि शब्द मन्दिर में पूजन अर्चन करने वाले मनुष्य एवं देवों को रास्ता देने की सूचना के साथ-साथ पूजकं के गुण स्मरण सहित अपने अन्तरंग में स्थित भाव परिग्रह स्वरुप क्रोध मान माया लोभ को स्वयं की आत्मा से दूर होने के लिये सूचना देता है अर्थात हटाता है। मन्दिर के द्वार के एक पार्श्व (भाग) में प्रासुक जल से हाथ पैर एवं मुख की शुद्धि करके मन्दिर में प्रवेश करना चाहिये क्योंकि रास्ते में गमन करते समय अशुद्ध-मिट्टी, कीचड़, आदि के साथ साथ सूक्ष्म रोगाणु, कीटाणु हाथ-पैर में लग जाते हैं। बिना हाथ पैर धोये मन्दिर में प्रवेश करने से मन्दिर का वातावरण दूषित हो जाता है। पूजक को चाहिये की शरीर-शुद्धि, भाव-शुद्धि एवम् वातावरण शुद्धि के लिये मुख में इलायची, लोंग, पान, तम्बाकू आदि वस्तुओं का प्रयोग न करें। मन्दिर जाने के समय तथा पूजन, वन्दना, स्तुति, नमस्कार के समय चर्म-निर्मित एंव ऊन से निर्मित कोई भी वस्तु का

प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार प्राणी के अवयव स्वरूप, रक्त, मांस, हड्डी आदि से निर्मित लिपिस्टिक, क्रीम, पाउडर, नेलपालिश आदि का सौन्दर्य-प्रसाधन सामग्री का प्रयोग मन्दिर में जाते समय कदापि नहीं करना चाहिये तथा चर्बी से निर्मित साबुन से स्नान करके भी मन्दिर नहीं जाना चाहिये, क्योंकि प्रथमत: उपरोक्त चीजों की उत्पत्ति हिंसात्मक साधनों एंव प्रक्रिया से होती है एंव प्रत्येक समय में उपरोक्त चीजों में तज्जातीय अचाक्षुष सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है। इसी प्रकार सम्पूर्ण चर्मज, रोमजों में जीवों की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है। वस्तुत: उन चीजों का त्याग आजीवन करना ही श्रेयस्कर है। उपरोक्त चीजों के व्यवहार से हिंसा के साथ साथ शारीरिक शुद्धि, मानसिक शुध्दि एवं वातावरण की शुद्धि भी नहीं रहती है। मन्दिर आते समय चप्पल जूते आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि नंगे पैर आने से पूज्य के प्रति विनय प्रकट होता है, उसके साथ साथ पृथ्वी के साथ पैर के स्पर्श एंव घर्षण से भावात्मक विद्युत का परिचालन पृथ्वी के साथ होता है, जिससे स्वास्थ्य लाभ होता है।

मन्दिर में प्रवेश के बाद ईर्यापथ-शुद्धि, दर्शन-पाठ, णमोकार मंत्र एंव चत्तारि दण्डक आदि का स्मरण करते हुये मन्दिर की तीन प्रदक्षिणा करें। (1) जन्म, जरा, मृत्यु (2) शारीरिक- मानसिक-आध्यात्मिक रोग (3) द्रव्य कर्म, भाव, कर्म, नोकर्म विनाशार्थ एवं सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्र की प्राप्ति के अर्थ के बायें से दायें की तरफ तीन प्रदक्षिणा लगायें प्रदक्षिणा के अन्नतर भगवान, के सम्मुख एक पार्श्व भाग में कार्योत्सर्ग मुद्रा में खड़े होकर ईर्यापथ-शुद्धि के लिये णमोंकार मन्त्र का नव बार स्मरण करें। गवासन का यह अर्थ है कि जिस प्रकार गाय पांच अंगों का स्पर्श करके बैठती है, उसी प्रकार बैठकर मन वचन काय से नमस्कार करें। भावपूर्वक गवासन में बैठकर नमस्कार करने से मानसिक तनाव आदि दूर होते हैं, विनय गुण प्रकट होता है, पूज्य के प्रति आदर एवं समर्पण भाव प्रकट होता है। दर्शन के उपरान्त पूवाचार्यों के द्वारा प्रणीत अभिषेक-पूजा विधिपूर्वक करें। अनन्तर प्रासुक शुद्ध सफेद वस्त्र से भगवान् को ठीक से पोंछकर सिंहासन में भगवान् को विराजमान करें। आगमानुकूल प्रासुक आसन में पूर्व या उत्तर दिक् की ओर मुख करके बैठकर पूजन करें।

देवदर्शन तथा पूजा का फल

भक्त जब भगवान के पास जाता है तब वह भगवान् के स्वरुप रुपी दर्पण से अपने स्वरुप का दर्शन करता है। जब वह दृव्य दृष्टि से स्वयं को एवं भगवान् को देखता है तब दोनों में कोई अन्तर द्रष्टिगोचर नहीं होता है क्योंकि पूज्य भी जीव द्रव्य है तथा पूजक भी जीव द्रव्य है। गुण द्रष्टि से अवलोकन करता है तब दोनों से महान अन्तर परिलक्षित नहीं होता है किन्तु जब पर्याय द्रष्टि से अवलोकन करता है तब दोनों से महान अन्तर परिलक्षत होता है क्योंकि भगवान पर्याय दृष्टि से अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्य के अक्षय भण्डार है एवं पूजक स्वयं अनन्त अज्ञान, दुखादि को भोगने वाला है।

अंग्रजी में एक वाक्य है-

There is no differance between God and us.

But there is so difference between God and us.

अर्थात द्रव्य दृष्टि से भगवान और हमारे में कोई अन्तर नहीं है किन्तु अवस्था दृष्टि (पर्याय दृष्टि)से भगवान और हमारे में महान अन्तर है। भक्त भगवान के पास एक अलौकिक उपादेय प्रशस्त स्वार्थ को लेकर जाता है। उसका स्वार्थ यह है कि मेरा स्वरुप भगवत् स्वरुप होते हुये भी में अभी दीन-हीन भिखारी के समान हूँ। मैं भगवान के पास से उनसे वही शिक्षा प्राप्त करुं जिस मार्ग पर चलते हुये भगवान ने इस परमोत्कृष्ठ नित्यानन्द अवस्था को प्राप्त किया है। इसलिये भक्त की आद्यन्त भावना एवं परिणति निम्न प्रकार की होती है -

''दासोऽहं'' रटता प्रभो ! आया जब तुम पास,

'' द ''दर्शत हट गयो, सोऽहं रहो प्रकाश।

सोडहं सोडहं ध्यावतो रह न सको सकार ,

दीप अहं मय हो गयो अविनाशी अविकार॥

जब भक्त भगवान के पास आता है तब वह स्वयं को दास (पूजक)एवं भगवान को प्रभु (पूज्य) मानता है। जब भगवान का दर्शन करके भगवान का स्वरुप एवं स्वस्वरुप का तुलनात्मक विश्लेषण करता है जब वह पूज्य के गुणों को अनुकरण करके आध्यात्मिक साधन करता है तो उस साधना के फलस्वरुप निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है तब सोऽहं रुप विकल्प भी विलय हो

जाता है, तबअहं रूप अविनाशी, अविकार स्वरुप को प्राप्त कर लेता है। यह ही पूजा का परमोत्कृष्ट फल है। आचार्य प्रवर उमास्वामी ने कहा है-''वन्दे तदगुण लब्धये '' अर्थात् मैं वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी भगवान को उनके गुणों की प्राप्ति के लिये वन्दना करता हूँ।

पूजा,वन्दना, अर्चना, विनय, समर्पित भाव में ऐसी एक शक्ति है जिससे पूजक के मन में पूज्य के गुण संचार करते जाते हैं तथा धीरे-धीरे पूजक भी पूज्य बन जाता है। विदृत्वर्य श्री आशाधर जी ने अध्यात्म रहस्य के मंगलाचरण में कहा है -

भव्येभ्यो भजमानेभ्यो यो ददाति निजपदम्।

तस्मै श्री वीरनाथाय नमः श्री गौतमाय च॥

जो भजमान भव्यों को भक्ति में अनुरक्त भव्य जीवों को अपना पद प्रदान करते हैं जिनके भजन, पूजन, आराधना से भव्य प्राणियों को उन जैसे पद की प्राप्ति होती है उन श्री वीर स्वामी को अक्षय ज्ञान-लक्ष्मी एवं भारती को नमस्कार हो।

वीतराग सर्वज्ञ भगवान के पास जो गुण होते हैं। वे ही गुण पूजक को देते है। भगवान के पास स्वरुप को छोड़कर और कुछ उनके पास है ही नहीं। इसीलिये वे भक्त को स्वस्वरुप ही दे देते हैं। पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।

ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिंद वचः।॥ इष्टोपदेश 23॥

आत्म ज्ञान से शून्य अज्ञानी की सेवा-उपासना अज्ञान को देती है और ज्ञानियों की सेवा उपासना ज्ञान उत्पन्न करती है क्योंकि यह बात अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्य के पास जो कुछ होता है उसी को वह देता है।

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।

वत्तिर्दीप यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी । (स.त.97)

अपने आत्मा से भिन्न अर्हन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना, आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाती है। जैसे दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन तदुपं ध्यायेतमात्मानमात्मवित् ।
ेन तन्मयता याति सोपधिः स्फटिको यथा ॥

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है उस स्वरूप हो जाता है। जैसे स्फटिक मणि विभिन्न रंगों से उस वर्ण रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।
अर्हत्ध्यानविष्टो भवार्हन् स्यात स्वयं तस्मात् ॥

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरुप हो जाता है। अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

जिनार्चनासे बहुआयामी (प्रकार) लाभ होता है। इससे महान् आत्मा के प्रति विनय भाव प्रकट होता है। मानसिक शान्ति मिलती है जिससे मानसिक तनाव दूर होने के कारण शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य प्राप्त होता है। पूज्य पुरुष के प्रति प्रशस्त राग होने के कारण पाप कर्म के संवर के साथ साथ असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा एवं सातिशय पुण्य का बन्ध होता है। जिससे अभ्युदय के साथ साथ मोक्ष सुख की उपलब्धि होती है। पूज्य पुरुष का नामोच्चारण, गुणगान, नामस्मरण स्वयं मंगल स्वरुप होते हैं।

परिच्छेद – 3

इष्ट प्रार्थना

मंगलमय णमोकार मंत्र–

णमो अरिहंताणम्,
णमो सिद्धाणम्,
णमो आइरियाणम्,
णमो उवज्झायाणाम्,
णमो लोए सव्व साहूणम्।

अर्थ – णमो अरिहंताणम् - जिसने कोध-मान-माया-लोभ मोहादि चार घातियाँ रूप अंतरंग कर्म शत्रुओं को जीता है एवं अनंत-दर्शन, अनंत-ज्ञान, अनंत-सुख, अनंत वीर्यादि गुणों को प्राप्त किया है, अंतरंग-बहिरंग लक्ष्मी से युक्त हैं एवं सब जीवों के कल्याण के लिये निरपेक्ष भाव से आत्म

कल्याण का उपदेश देते हैं, उनको अरिहंत कहते हैं। सम्पूर्ण विशव में स्थित समस्त अरिहन्त परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो अरिहंत परमेष्ठी जीवन मुक्त शरीरधारी परमात्मा होते हैं।

णमो सिद्धाणम् - जीवन-मुक्त परमात्मा जब शेष संस्कारों से अथवा 8 कर्मों एवं शरीर से भी मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध, नित्य, निरंजन, निर्विकार स्वरूप को प्राप्त करते हैं, तब उनको सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं। वे सिद्ध परमेष्ठी एक ही समय में लोकाकाश के शिखर भाग में स्थित सिद्धशिला में जाकर विराजमान होते है। संसार परिभ्रमण के कारणभूत समस्त संस्कार अर्थात् कर्मों को सम्पूर्ण रूप से नष्ट करने के कारण सिद्ध परमेष्ठी पुनः संसार में जन्म नहीं लेते हैं। वहाँ अनन्तकाल तक अनन्त सुख-शांति का अनुभव करते हुये विराजमान रहते हैं। इसी प्रकार के सम्पूर्ण सिद्धों को मेरा नमस्कार हो।

णमो आइरियाणम्- जो महामानव अंतरंग-बहिरंग परिग्रहों को त्याग करके दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चरित्राचार, वीर्याचार और तपाचार का स्वयं आचरण करते हैं एवं आत्म साधक-भव्य मुमुक्ष शिष्यों (अनुयायियों) से आचरण कराते हैं, उनको आचार्य परमेष्ठी कहते हैं। इसी प्रकार के विश्व में स्थित सर्व आचार्य परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

णमो उवज्झायाणम् - जो रत्नत्रय से अलंकृत हैं, समस्त ज्ञान विज्ञान में पारंगत हैं, आत्म ज्ञान विशारद हैं, स्वमत-परमत के ज्ञाता हैं एवं स्वयं अध्ययन करते हैं तथा शिष्य वर्ग को अध्यापन कराते हैं, उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। अतः विश्व में स्थित सम्पूर्ण उपाध्याय परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

णमो लोए सव्वसाहूणम् - जो बालकवत् यथावत रूप को धारण करके सतत् आत्म साधन में रत रहते हैं और जो शत्रु-मित्र, सुखः -दुखः, लाभ-अलाभ, निंदा- प्रंशसा, जन्म-मरण में समता भाव रखते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं। विश्व में स्थित सर्व साधु परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

नमस्कार मंत्र महात्म्य –

एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलम् ॥

अर्थ - यह पंच नमस्कार पंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और

सब मंगलों में पहला मंगल है।

विघ्नौघा प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगा:।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

जिनेन्द्र, वीतराग, सर्वज्ञ भगवान के स्मरण-स्तवन मात्र से विघ्न, कष्ट, संकटों के समूह विनाश हो जाते हैं। शाकिनी, डाकिनी, भूत-प्रेत, व्यन्तर, सर्प, हिंसक पशु आदि दूर हो जाते हैं। विष निर्विष हो जाता है।

अत: सुख, शान्ति, अभ्युदय मोक्षादि को चाहने वाले भव्य जीवों को णमोंकार महामंत्र का स्मरण, मनन, ध्यान-चिन्तन, श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा एवं शुद्ध भाव से सतत् खाते, पीते, उठते, बैठते, चलते, फिरते, सर्व कार्य के प्रारम्भ में करना चाहिये। जिस णमोकार मंत्र रुपी मूल्य से मोक्ष रुपी वैभव मिल सकता है, उससे सांसारिक वैभव मिले तो क्या बड़ी बात है ? यह तो आनुषंगिक फल है, जैसे - कृषक को धान्य खेती से धान्य के साथ आनुसंगिक पुआल स्वयं मिलता ही है।

मंगल दण्डक

चत्तारि मंगलम्,
अरिहन्त मंगलं,
सिद्ध मंगलम्,
साहू मंगलम्,
केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलम्।

अर्थ - चत्तारि मंगलम् - विश्व(लोक) में चार प्रकार के मंगल होते हैं।

अरिहन्त मंगलम् - विश्व में वीतराग, सर्वज्ञ, अरिहन्त भगवान् मंगलमय हैं।

सिद्ध मंगलम् - विश्व में नित्य, निरजंन, शुद्ध-बुद्ध भगवान् मंगलमय हैं।

साहूमंगलम् - विश्व में साधु महात्मा (आचार्य-उपाध्याय-साधु) मंगलमय हैं।

केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलम् - वीतराग, सर्वज्ञ, केवली भगवान द्वारा प्रतिपादित अहिंसामय वीतराग विश्वधर्म मंगलमय हैं।

उत्तम दण्डक -

चत्तारि लोगुत्तमा,

अरिहंत लोगुत्तमा,
सिद्ध लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा,
केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि लोगुत्तमा - विश्व में चार उत्तम स्वरूप हैं।

अरिहंत लोगुत्तमा - विश्व में वीतराग, सर्वज्ञ अरिहंत भगवान् उत्तम स्वरूप हैं।

सिद्ध लोगुत्तमा - विश्व में नित्य, निरंजन, शुद्ध-बुद्ध सिद्ध भगवान उत्तम स्वरूप हैं।

साहू लोगुत्तमा - विश्व में साधु महात्मा (आचार्य-उपाध्याय-साधु) उत्तम स्वरूप हैं।

केवली पण्णतो धम्मो लोगुत्तमा - वीतराग - सर्वज्ञ केवली भगवान द्वारा प्रतिपादित अहिंसामय विश्वधर्म उत्तम स्वरूप हैं।

शरण दण्डक-

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि,
अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि,
साहु सरणं पव्वज्जामि,
केवली पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

चत्तारि सरणं पव्वज्जमि - मैं लोक में स्थिर चार मंगलमय, उत्तममय, शरणभूत चार की शरण में जाता हूँ।

अरिहंते सरणं पव्वज्जामि - मैं वीतराग, सर्वज्ञ अरिहन्त भगवान् की शरण में जाता हूँ , अर्थात् उनका आश्रय-अवलम्बन ग्रहण करता हूँ।

सिद्धे सरणं पवज्जामि - मैं सिद्ध शुद्ध नित्य- निरंजन सिद्ध भगवान की शरण में जाता हूँ।

साहू सरणं पव्वज्जामि - मैं साधु (आचार्य-उपाध्याय-साधु) परमेष्ठी की शरण में जाता हूँ।

केवली पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि - मैं केवली भगवान द्वारा प्रतिपादित अहिंसामय वीतराग धर्म की शरण में जाता हुँ।

भावार्थ - इस प्रकार मंत्र में किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं

किया गया है। परन्तु विशेष आध्यात्मिक गुण सम्पन्न महामानवों को नमस्कार किया गया है। मनुष्य को महान् बनने के लिये गुणपूजक बनना अनिवार्य है। मनुष्य कुणपूजक होने के कारण कुणीजनों का भी पूजक है। 'वंदे तद्गुण लब्धये' अर्थात् उन आध्यात्मीक विभूतियों के आध्यात्मिक गुणों को प्राप्त करने के लिये मैं वंदना करता हूं। जो गुणग्राही मनुष्य निरपेक्ष, निःस्वार्थ, सरल, सहज भाव से महापुरुषों का गुणगान करता हैं अर्थात् उनको आदर्श मानकर चलता है, तब एक न एक दिन वह भी उसी प्रकार आदर्श बन जाता है। इस पवित्र उदात्त से मन में एक आस्था विश्वास-श्रद्धा उत्पन्न होती है, जिससे उसको प्रतिकूल परिस्थिति रूपी घने अन्धकार में भी आशारूपी ज्योति के दर्शन होते है।

जो मंगल स्वरूप है, वही उत्तम स्वरुप है, वही शरणभूत है। केवली द्वारा प्रतिपादित अहिंसामय धर्म मंगलमय है, उत्तम स्वरुप है एंव शरणभूत है। इसलिये मनुष्यों को मंगलमय, उत्तममय एंव स्वतंत्र बनने के लिये उपरोक्त मंगलदियों का आश्रय लेना श्रेयस्कर है।

येषां न विद्या, न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं, न गुणों न धर्मः।
ते मर्त्यलोक, भुवि भार भूताः,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति॥

जिसने विद्या अध्ययन नहीं किया, तप आचरण नहीं किया, दान नहीं दिया, ज्ञान, शील, गुण, और धर्म को प्राप्त नहीं किया, वह मनुष्य लोक में पृथ्वी के लिये भार स्वरूप होकर, मनुष्य रुप से पशु होकर विचरण करता है। अर्थात उपरोक्त गुणों से रहित मनुष्य न स्वयं का उपकार करता है न पर का इसलिये वह मनुष्य के आकार में पशु समान है।

काव्य शास्त्र विनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मुर्खाणां, निद्रया कलहेन वा॥

बुद्धिमानों का समय काव्य, शास्त्र अध्ययन में सुख शांतिमय व्यतित होता है परन्तु मूर्खों का समय व्यसन, निद्रा और कलह में व्यतित होता है। अतः विद्या,ज्ञान, विज्ञान, सुसंस्कार से मण्डित व्यक्ति ही देश के लिये राष्ट्र का लिये भूषण स्वरुप है। केवल बाह्य वेश-भूषा, फैशन आदि से कोई भी

यथार्थ से अंतरंग सुन्दरता को प्राप्त नहीं कर सकता है। शरीर की सजावट तो केवल शव की सजावट तथा चर्मकार का कार्य है।

परिच्छेद - 4

श्रावक के अष्ट मूलगुणों का वर्णन

मद्य मांस मधु निशासन, पंचफली विरति पंचकाप्तनुती।
जीवदया जल गालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः॥

(1) मद्य, (2) मांस, (3) मधु इन तीन प्रकार का त्याग, (4) रात्रि भोजन का त्याग, (5) पांच उदुम्बर फलों (1, बड़, 2. पीपल, 3. गूलर, 4. अंजीर, 5. कठुमर) का त्याग, (6) नित्य त्रिकाल देव-प्रार्थना करना, (7) दया करने योग्य प्राणियों पर दया करना और (8) जल छानकर पीना अर्थात् काम में लाना इस प्रकार 8 मूलगूण कहे हैं।

(व्यसन का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण पुस्तक में (1) मद्य (2) मांस का वर्णन हो चुका है वहां देखने के लिये कष्ट करें।)

मधु त्याग -

मधु मक्खियाँ घूम घूम कर पुष्पों से मधु को मूँह में भरकर लाती हैं और अपने छत्ते में उस मधु को (उल्टी) करके संग्रह करती हैं। मधु (शहद) को प्राप्त करने के लिये छत्ते के नीचे धुआँ करके मधु, मक्खियों को मारकर उस छत्ते को बाद में निचोड़कर मधु निकाला जाता है। जिससे अनेक मधु मक्खियों के अण्डे फूटकर उनका रस भी मधु के साथ आ जाता है। प्रथमतः मधु मक्खियों की वांति(उल्टी) है। कोई भी स्वयं की वांति (उल्टी) होने पर घृणा के कारण नहीं खाते हैं, फिर विचार करना चाहिये कि मक्खियों की वांति घृणास्पद कैसे नहीं होगी ? अर्थात् अवश्य होगी।

उस मधु में उस वर्ण के असंख्यात सूक्ष्म जीव रहते हैं जिससे मधु सेवन से उन जीवों का घात हो जाता है। मधु (शहद) मधु, मक्खियों का संग्रहित भोजन है। मधु निकालना अर्थात् उनके आहार को छीन लेना है। मधु निकालते समय अनेक अण्डों का संहार हो जाता है , जिससे महान हिंसा होती है। उस मधु, मक्खियों की टट्टी, पेशाब मिले रहते हैं। कदाचित्

मधु-मक्खी-पालन से बिना मधु, मक्खियों को मार कर मधु प्राप्त करने पर भी उस मधु में उस वर्ण के असंख्यात जीव रहते हैं तथा उस मधु सेवन से उन जीवों का संहार हो जाता है। दूसरा पक्ष यह है कि मधु, मक्खियों की वांति, टट्टी-पेशाब मधु में होते हैं। हिन्दु धर्म में कहा है -

सप्त ग्रामेषु यत्पापमग्निना भस्मसात्कृते।
तन्पापं जायते जंतोर्मधुबिंद्वेक भक्षणात्॥ (मनुस्मृति)

सात ग्रामों को अग्नि से जलाने से जो पाप होता है वह पाप एक बिंदु मात्र मधु खाने से होता है इसलिये विवेकी पुरुषों का मधु त्याग करना चाहिये यदि औषधि के लिये मधु का प्रयोग करना पड़े तो उसके बदले में गुड़, चासनी, मुनक्का आदि मधुर रस का प्रयोग करना चाहिये परन्तु मधु सर्वथा त्यजनीय है डॉक्टर लोग जो उसके सेवन के लिये सलाह देते हैं वे सर्वथा अनुचित हैं।

रात्रि भोजन त्याग का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण -

रात को सूर्य की रश्मि के अभाव से क्षुद्र पंतगा आदि जीव गुप्त स्थान से निकल कर विचरने लगते है वे सब आहारादि वस्तुओं में गिर भी जाते है उस आहार का भक्षण करने से उन जीवों का भी भक्षण हो जाता है, जिससे हिंसा का दोष एवं मांस भक्षण का दोष लगता है, उन विषाक्त जीवों से अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते है। आहार में जूँ खाने से जलोदर रोग हो जाता है मकड़ी खाने से कुष्ठ रोग हो जाता है, मक्खी खा जाने से वमन हो जाता है, केश खा जाने से स्वर भंग हो जाता है, चींटी खाने से पित्त निकल आता है, विषभरी छिपकली के विष से आदमी को अनेक रोग होते हैं। एवं मरण को भी प्राप्त हो जाता है। रात को सूर्य रश्मि मे अभाव से पाचन शक्ति मंद हो जाती है जिससे खाया हुआ भोजन ठीक से पाचन नहीं होता है। उसे बदहजमी, गेट्टिक, पेट-दर्द, सिर दर्द आदि रोग हो जाते हैं। इस प्रकार रात्रि भोजन सर्वत्र मांस भक्षण के सदृश्य हानिकारण होने से त्यजनीय है।

सूर्य किरण में अनेक गुण हैं। विटामिन डी भी है। सूर्य किरण से विषाक्त कीट पतंग-संचार नहीं करते हैं। वायु, वातावरण शुद्ध हो जाता है पाचन शक्ति बढ़ती है। दिन को वनस्पति के अंगार विश्लेषण के कारण प्राण वायु मिलती है। दिन में जितना प्रकाश रहता है उतना प्रकाश और स्वास्थ्यकर प्रकाश, कृत्रिम कोई भी प्रकाश में नहीं हो सकता है। और रात को कृत्रिम

प्रकाश से कीट-पतंग अधिक संख्या में आकर्षित होकर प्रकाश के स्थान में आते है। यह सब को अवगत है ही इसी प्रकार अनेक कारणों से रात को भोजन करना धर्मत: एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानिकारक है।

दिवसस्य मुखेचान्ते, मुक्ता द्वे द्वे सुधार्मिकै:।
घटिके भोजनं कार्य, श्रावकाचार चंचुभि:॥

धर्मात्मा श्रावकों को सवेरे और शाम के आरम्भ और अन्त की दो दो घड़ी (48 मिनट) छोड़कर भोजन करना चाहिये।

वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक एवं डॉक्टर लोगों ने सिद्ध किया है। कि रात्रि में सूर्य किरण के अभाव में भोजन करके सोने से खाया हुआ भोजन ठीक से पाचन नहीं होता है इसलिये अनेक रोग होते हैं। इसलिये रात्रि के 3-4 घंटे पहले अल्पाहार करना चाहिये जिससे आहार शयन के पहले पच जायेगा।

हिन्दु धर्म में कहा भी है -

चत्वारो नरक द्वाराणि, प्रथमं रात्रि भोजनम्।
परस्त्री गमनं चैव, संधानानंतकायिके॥ (हिन्दु धर्म)

नरक के चार द्वार है - (1) रात्रि में भोजन करना (2) पर स्त्री गमन करना (3) अचार खाना (4) जमीकन्द खाना।

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रूधिरमुच्यते।
अन्न मांस समं प्रोक्तं, मार्कण्डेण महर्षिणा॥ (हिन्दु धर्म)

सूर्य अस्त होने के बाद जल को रूधिर कहते हैं। और अन्न को मांस कहते हैं यह मार्कण्डेय महाऋषि ने कहा है।

मृत स्वजन मात्रेऽपि, सूतकं जायते किल।
अस्त गते दिवानाथे, भोजनं किमु क्रियते॥ (हिन्दु धर्म)

केवल स्वजन मरने से सूतक होता है, परन्तु जो जगत बन्धु सूर्य है उनके अस्त पर भोजन क्यों करते हैं?

ये रात्रौ सर्वथाहारं, वर्जयन्ति सुमेधस:।
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते॥

जो रात को सर्वथा आहार-त्याग करता है, उस ज्ञानी के एक महीने में 15 दिनों के उपवास का फल मिलता है।

रात्रि भोजन के साथ साथ रात को बनाया हुआ आहार भी नहीं खाना चाहिये क्योंकि रात्रि में बनाते समय अनेक सूक्ष्म जीव आहार में गिरकर आहार

में मिल जाता हैं। इसी प्रकार रात्रि भोजन में हिंसा होती है, अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, और वह जीव मरने के पश्चात् रात्रिचर जीव में जन्म लेता है अर्थात् उल्लू, सिंह, व्याघ्र, बिल्ली आदि योनियों में उत्पन्न होते हैं।

पंचफल विरति –

पाँच उदुम्बर फलों का त्याग करना चाहिये (1) बड़ (2) पीपल (3) गूलर (4) अंजीर (5) कठूमर।

उपरोक्त पाचों फलों में साक्षात् त्रस जीव चलते हुये दिखाइ देते हैं। उन फलों के भक्षण से विषाक्त त्रस जीवों का भक्षण हो जाता है, हिंसा होती है एवं विभिन्न रोग शरीर में उत्पन्न होते है। इसलिये धर्मत: एवं स्वाव्थ्य के दृष्टिकोण से भी पंच उदुम्बरों का भक्षण करना हानिकारक होने से वर्जनिय है।

पंचगुरू भक्ति –

जो आध्यात्मिक गुणों से अलंकृत रहते हैं, जो गुणों से गुरू (भारी) रहते हैं जो मनुष्य समाज के लिये आदर्श स्वरूप, अनुकरणीय, समाज राष्ट्र के मार्गदर्शक होते हैं और जिनके लिये स्व-पर का भेद भाव नहीं रहता है, ''वसुधैव स्व कुटुम्बकम'' अर्थात् जिनका कुटुम्ब पूर्ण विश्व है उनको गुरू कहते हैं। वे पांच प्रकार के हैं -

(1) शरीरधारी जीवन्मुक्त निर्मल वीतराग परमात्मा अरिहन्त(2) शरीर रहित, निरजंन, शुद्ध, बुद्ध, परमात्मा ''सिद्ध'' (3) जो स्वयं धर्म के मार्ग पर सतत् विचरण करते हैं, एवं अन्य धर्म प्रेमी शिष्य वर्गों को धर्म के रास्ते में चलने के लिये प्रशिक्षण देते हैं ऐसे 'आचार्य परमेष्ठी' (4) जो स्वयं सत्य के साक्षात्कार के लिये ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन करते हैं एवं दूसरों को करवाते हैं, ऐसे ज्ञानधनी ''उपाध्याय संत'' (5) जो आत्म विशुद्धि के लिये शाश्वतिक शांति के लिये आत्म साधन में तत्पर रहते है, अंतरंग-बहिरंग ग्रन्थि से रहित 'निर्गन्थ साधुओं ' को मिला कर पंच गुरू होते हैं। उनके गुणानुराग से उनकी सेवा, स्तुति,वन्दना, अर्चना, पूजा,संरक्षण, वैयावृत्ति आदि करना पंचगुरू भक्ति है।

जीव दया –

''धर्मस्य मूलं दया'' अर्थात् धर्म का मूल दया होने से धर्मात्मा के लिये जीव दया करना सर्वोपरि है :-

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।

तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण ॥

(तुलसीदास)

मृत्यु-दण्ड से लोग डरते हैं। जीवन सबको प्यारा लगता है, दूसरों को अपने जैसा ही मानकर मनुष्य किसी को मारने की प्रेरणा न करें।

सव्वे वसन्ति दण्डस्य सव्वे भायन्ति प्रच्चुनो।
उतानं उपम, कत्वा न हन्नेय्य धातये ॥ (बौद्ध धर्म, धम्मपद)

दण्ड से सभी लोग डरते हैं। मृत्यु से भी भय खाते हैं। दूसरों को अपने जैसा मानकर मनुष्य न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करें।

प्राणीघातात् यो धर्ममिहिते मूढ मानस:।
स वाञ्छति सुधावृष्टि कृष्णाऽहि मुख कोटरात्॥ (व्यास वाक्य)

प्राणी घात से मूढ़ यदि धर्म को चाहता है वह मानो अत्यन्त भयंकर विषधर कृष्ण सर्प के मुख से अमृत वृष्टि को चाहता है अर्थात् जैसे कृष्ण सर्प के मुख से अमृत वृष्टि नहीं हो सकती है उसी प्रकार प्राणी घात से धर्म नहीं हो सकता है। इसलिये अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं -

"अमृतत्वहेतु भूतं परममहिंसारसायनं लब्ध्वा" (पुरूषार्थ सिद्धयुपाय)

अमृत तत्व के हेतुभूत अहिसा परम रसायन है अर्थात् अहिंसा रूपी अमृत पान से जीव को शाश्वतिक अजरामर, अनन्त, सुख, सम्पन्न मोक्ष मिलता है।

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरि त्यागा:"॥ (पाताञ्जलियोग द.)

अहिंसा में स्थिर होने पर अहिंसक महात्मा के सम्पर्क सहवास, दर्शन, स्पर्शन से सब प्राणियों का द्वेष भाव नष्ट हो जाता है।

अत: अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा जगदम्बा है, अहिंसा ही परम नीति है, अहिंसा ही परमदान है, अधिक क्या अहिंसा ही अमृत है, अहिंसा ही परमात्मा है स्वरूप है। इससे ही विश्वशांति, विश्वमैत्री, सह अस्तित्व, युद्ध में नि:शस्त्रीकरण हो सकता है। अधिक क्या विश्व में युद्धका नाम-निशान भी नहीं रह सकता है। अहिंसा के पूर्ण प्रसार से पुलिस, न्यायालय, मिलिट्री आदि की आवश्यकता ही नहीं होगी। प्रत्येक स्थान में धर्म-राज्य या रामराज्य ही हो जायेगा। इसलिये अहिसा रूप अमृत का सबको सेवन करना आवश्यक है।

जल छानकर पीने का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण

असंख्य त्रस जीवं अगालित जले निवसन्ति नित्यम्।
तेन तत्पानेन हिंसा च भवति बहु रोगम्॥

अगलित (बिन छना पानी) पानी में असंख्यात त्रस जीव सतत् वास करते हैं इसलिये बिना छना पानी पीने से हिंसा होती है एवं अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अत: कहा है-

दृष्टि पूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यं पूतं वदेत्वाचं मन: पूतं समाचरेत्॥ (मनुस्मृति)

देख कर जीवों की रक्षा करते हुये चलना चाहिये। वस्त्र से पानी को छानकर पीना चाहिये। मन को पवित्र बनाकर आचरण करना चाहिये।

आधुनिक वैज्ञानिक लोगों ने सिद्ध किया है कि एक जल बिन्दु में 36 450 कीटाणु रहते हैं। जैन विज्ञान के आध्यात्मिक वैज्ञानिको के आध्यात्मिक दिव्य ज्ञान से प्राग् ऐतिहासिक काल से ''जल में त्रस जीवों का सद्भाव है'' यह स्पष्ट एंव प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित किया है। वैज्ञानिक यन्त्र में सीमित शक्ति होने के कारण एक निश्चित आकार के जीव दिखायी देते है किन्तु उससे सूक्ष्म जीव उस सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से दिखाई देते हैं। इसलिये वैज्ञानिकों ने एक बिन्दु में 36450 जीवों को अभी तक पाया है। परन्तु सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, वीतराग-विज्ञान के ज्ञाता मनीषियों ने एक जल बिन्दु में जो जीव स्पष्ट अवलोकन किया है उनकी संख्या वर्तमान संख्या की अपेक्षा कई अरबों, खरबों गुनी है। यह संख्या स्थावर जीवों की नहीं है यह त्रस जीवों की है। स्थावर जीव भी उनमें अनेक हैं, इसीलिये अहिंसा एवं आरोग्य की दृष्टि से पानी छानकर भोजन में प्रयोग करना अत्यन्त अनिवार्य एवं विधेय भी है।

पानी छानने की विधि

पानी छानने के लिये सफेद, नवीन, मोटा कपड़ा प्रयोग में लाना चाहिये। कपड़ा यदि रंगीन होगा तो उस कलर-केमिकल (रंगीन रसायन) से जीवों को बाधा पहुंचेगी एवं घात भी होगा, इसलिये कपड़ा सफेद होना चाहिये। पहने हुये कपड़े या प्रयोग में लाये हुये कपड़े गंदे होने से जीवों को बाधा पहुंचेगी एवं जल दुषित हो जायेगा। कपड़ा पतला होने से जीव छनकर कपड़े के ऊपर नहीं रहेंगे। जिस बर्तन में पानी छानना है उस बर्तनसे कपड़ा तीन चार गुना बर्तन के मुँह से बड़ा होना चाहिये जिससे कपड़े को दोहरा करके छानने में सुविधा होगी। कपड़ा इतना मोटा होना चाहिये, जिसको दोहराने के बाद सूर्य

की किरणें उससे पार नहीं हो सके। जिस बर्तन में, जलाशय से पानी निकालना है, एंव जिसमें पानी छानना है इस प्रकार के दोनों बर्तन स्वच्छ होने चाहिये। जिस साधन से पानी निकालना है, वह साधन रस्सी आदि भी स्वच्छ होनी चाहिये। कुआँ से पानी निकालने की बाल्टी आदि के नीचे भी रस्सी होनी चाहिये जिससे छने हुये जीवों को सुरक्षित रूप से पानी में पहुँचाया जा सके।

जलाशय से पानी निकालने के पश्चात् दूसरे स्वच्छ बर्तन के ऊपर उपरोक्त कपड़े (छन्ना, नातना) को डालकर पानी सावधानी से छानना चाहिये जिससे छना हुआ पानी नीचे न गिरे, जीवों को घात न हो, जल का अपव्यय न होवे, पानी छानने के बाद तत्क्षण ही छने हुये जीव सहित कपड़े को सावधानी से लेकर जिससे जीव नीचे न गिरें, दुसरे पात्र के ऊपर रखकर छने हुये पानी को उस कपड़े केऊपर डालना चाहिये, छने हूये पानी को उस कपड़े के ऊपर डालना चाहिये, छने हुये जीव उस पात्र में बाधा रहित पहूँच जायेंगे। उन जीवों को सावधानी पूर्वक पानी के पास पहुंचाकर रस्सी ऊपर खींच देना चाहिये, जिससे पात्र उल्टा होकर पानी सहित जीव, पानी में प्रवेश कर जायेंगे। छने हुये जीवों को कपड़े के उपर ज्यादा समय तक नहीं रखना चाहिये-क्योंकि ज्यादा समय रहने पर उपयुक्त जल एवं वातावरण के अभाव में जीव मरण को प्राप्त हो जायेंगे। ऊपर से भी जीवों को नहीं डालना चाहिये, क्योंकि ऊपर से गिरने से प्रतिघात के कारण जीव मर जायेंगे। छने हूये जीवों को ऊपरी स्थल भाग में नहीं फेंकना चाहिये, क्योंकि वे वहां पर जीवित नहीं रह सकते। जिस जलाशय से पानी निकाला गया है उसी जलाशय में उन जीवों को डालना चाहिये क्योंकि अन्य जलाशय का पानी का गुण, रासायनिक धर्म अलग होने के कारण उन जीवों को कष्ट पहूँचेगा एवं घात भी हो सकता है।

वर्तमान में जलनलियों का प्रयोग ज्यादा हो रहा है, उससे ही जल लाते हैं, पानी छानने के लिये अधिकतर लोग नल में कपड़ा बाँध देते हैं और कपड़ा जब तक गलकर नष्ट नहीं होता है, तब तक बंधा रहता है, यहाँ तक की नीचे कपड़ा गलकर फटजाने पर भी दूसरा नया कपडा प्रयोग में नहीं लाते हैं नल से पानी छानने के पश्चात् नल में बंधे कपड़े को सावधानी से खोलकर छने हुये पानी से धोकर उस कपड़े को सुखा देना चाहिये। उन जीवों को जिस नाली में स्वच्छ पानी बह रहा है, वहां छोड़ देना चाहिये। वस्तुत: उनकी

सम्पूर्ण सुरक्षा के लिये जहां से पानी नल में आ रहा है वहां ही छोड़ना चाहिये परन्तु यह असम्भव नहीं होने पर भी प्राय: कष्ट साध्य होने से स्वच्छ बहती हुई नाली में छोड़ना अपवाद मार्ग है ।वहां पर भी उनकी सुरक्षा होना प्राय: असम्भव है, क्योंकि नाली में दूषित पानी बहता रहता है जिससे उन जीवों का घात होना प्राय: सम्भव है। इसलिये दयालु धर्मात्माओं को इस प्रकार के जलाशयों से पानी लाना चाहिये, जहाँ पर जीव सुरक्षित रूप से पहुँच सकते हैं।

छने पानी की मर्यादा

उपरोक्त विधि से पानी को छानने के बाद पानी की मर्यादा अर्थात् अवधि अन्तर्मुहूर्त अर्थात् 48 मिनिट के अन्दर-अन्दर है। इसी प्रकार त्रस जीव से रहित शुद्ध पानी का प्रयोग स्नान करने के लिये, कपड़े धोने के लिये, पीने के लिये, भोजन तैयार करने के लिये, बर्तन-मांजने-धोने के लिये आदि समस्त कार्य में प्रयोग करना चाहिये। वर्तमान में कुछ लोग पीने के लिये एन-केन-प्रकारेण सुबह छना हुआ पानी दिनभर अर्थात् शाम तक प्रयोग करते हैं। परन्तु स्नानादि कार्यों के लिये प्राय: अनछना पानी का ही प्रयोग करते है। स्नानादि में पानी का जो उपयोग होता है उसमें क्या जीवों का घात नहीं होता है ? अवश्य होता है।

एक बार छानने के बाद गृहस्थ लोग 48 मिनिट के पहले पहले तक उसको प्रयोग करते हैं। उसके पश्चात् प्रयोग करना है तो पुन: उपरोक्त रीति से ही छानकर पानी का उपयोग करना चाहिये। पानी की मर्यादा इससे अधिक बढ़ाना हो तो उसमें इलायची, लोंग पीसकर इतनी डालनी चाहिये जिससे पानी का स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण बदल जाना चाहिये। इस प्रकार की विधिसे प्रासुक किये पानी की मर्यादा 6 घण्टे है तथा थोड़ा गर्म करने पर भी पानी की मर्यादा 6 घण्टे होती है। इससे भी अधिक मर्यादा के लिये पानी को खूब उबाल लेना चाहिये, जिससे उस पानी की मर्यादा 24 घण्टे हो जाती है। 24 घंटों के बाद उस पानी को उबालकर या छानकर या उसी ही अवस्था में प्रयोग नहीं करना चाहिये।

दूध, दही, घी, मक्खन की मर्यादा –

प्रासुक पानी से थनों को धोकर, हाथ को पानी से धोकर स्वच्छ बर्तन

में दूध निकालना चाहिये, उस दूध को अन्तर्मुहूर्त अर्थात 48 मिनिट के अन्दर अन्दर छानकर गर्म करना चाहिये। ठीक से अर्थात् उबाल आने पर दूध की मर्यादा 24 घण्टे हो जाती है। 24 घण्टे के पश्चात् या बिना गर्म किया दूध में तज्जातिय अर्थात जैसे गाय के दूध में गाय जातिज असंख्यात सूक्ष्म (बैक्टिरया) जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिये अशुद्ध दूध सेवन से हिंसा होती है एवं रोग का कारण बनता है।

उस शुद्ध दूध में शुद्ध चांदी, मारबल-पत्थर, नारियल की नरेठी डालकर दही जमाना चाहिये। पहले का दही, मट्ठा डालकर तैयार किया हुआ दही अमर्यादित होता है। कच्चे दूध में दही डालकर तैयार किया गया दही भी अशुद्ध है। अमर्यादित दूध से दही बनाने से, अशुद्ध पात्र या जामन होने से उस दही में अनेक बैक्टिरया उत्पन्न होते हैं, उस प्रकार का दही खाने योग्य नहीं है। परन्तु उपरोक्त शुद्ध दही में जीव नहीं होने से 24 घण्टे के पहले पहले भोजन में प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार दही मथने से शुद्ध मट्ठा (महि) बनता है एवं शुद्ध मक्खन निकलता है। उस मक्खन को अन्तर्मुहूर्त अर्थात् 48 मिनिट के पहले घी बना लेना चाहिये, नहीं तो उस वर्ण के असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उससे जो घी बनता है वह भी अशुद्ध होता है। अन्तर्मुहूर्त के पहले मक्खन में जीव नहीं होने पर भी मक्खन कामोद्दीपक, इन्द्रिय उत्तेजक होने से खाने के लिये योग्य नहीं है। इसी प्रकार यह अष्ट मूलगुण प्रत्येक आदर्श नागरिक के लिये, नैतिक उन्नति के लिये धार्मिक जागृति के लिये अत्यन्त अनुकरणीय है।

परिच्छेद 5

श्रावक के छ: दैनिक कर्म

देव-गुरूपास्ति च स्वाध्याय संयम तप दानम्।
कर्त्तव्य: श्रावकाणां च उभय लोक हिताय ॥

(1) देव पूजा (2) गुरूओं की सेवा (3) आर्ष-ग्रन्थों का स्वाध्याय (4) प्राणी रक्षा एवं इन्द्रिय मन निग्रह (5) तपश्चरण (6) स्व-पर उपकार के लिये दान देना ।यह उभय लोक के हित के लिये श्रावकों को दैनिक करने योग्य कर्त्तव्य है।

(1) देव पूजा –

जो अध्यात्मिक महापुरूष इन्द्रिय, मन, अन्तरंग शत्रु-क्रोध-मान-मायालोभादि को जीतते हैं ऐसे जिनेन्द्र देव, सर्वज्ञ एवं वीतराग होते हैं। उनके गुणानुराग से गुण स्मरण करना, प्रार्थना करना, पूजा (अर्चना), वन्दना आदि करना देव पूजा है। इससे मन प्रशम भाव को प्राप्त होता है जिससे मानसिक शान्ति मिलती है, पाप नष्ट होता हैं, पुण्य की प्राप्ति होती है और परम्परा में स्वर्ग मोक्ष की उपलब्धि होती है।

(2) गुरू सेवा -

धर्म की साक्षात् जीवन्त मूर्ति स्वरूप, अन्तरंग-बहिरंग ग्रन्थियों से विमुक्त, साँसारिक पापात्मक कार्य के जो त्यागी हैं वे गुरू हैं। उनकी सेवा, विनय आदि करना गुरूपास्ति है। गुरू के बिना धर्म का यथार्थ प्रतिपादन, संरक्षण, संवर्धन नहीं हो सकता है। इसलिये गुरू बिना धर्म भी स्थिर नहीं रह सकता है। धर्म बिना सुख नहीं है इसलिये सुख के लिये गुरूओं की सेवा नित्य करना चाहिये।

गुरू सेवा का फल -

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेभोर्गो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दर रूपंस्तवनात्कीर्तिस्तपो निधिषु॥ (श्रावकाचार-समन्तभद्राचार्य)

गुरूओं को प्रणाम करने से उत्तम गोत्र की प्राप्ति होती है, दान देने से उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है, उपासना करने से स्वयं की पूजा होती है। भक्ति करने से कामदेव सदृष्य लावण्य युक्त सुन्दर शरीर की प्राप्ति होती है, स्तवन करने से कीर्ति दशों दिशाओं में फैलती है।

कवि ने कहा है -

गुरू गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरूदेव की, गोविन्द दियो बताय॥
गंगा पापं शशी तापं दैन्य कल्पतरूस्तथा।
पापं तापं तथा दैन्य सर्वं सज्जन संगमः॥

गंगा के स्नान से ताप नष्ट होता है, चन्द्र किरण से संताप नष्ट होता है, कल्पवृक्ष से दरिद्रता नष्ट होती है परन्तु सज्जन (गुरू) की संगति से पाप, ताप तथा दीनता सर्व एक साथ विलिनता को प्राप्त होती है।

गुरू भक्ति सती मुक्तयै, क्षुद्रं किंवा न साधयेत्।
त्रिलोकी मूल्य रत्नेन, दुर्लभः किं तुषोत्करः॥

यदि गुरू भक्ति से मोक्ष रूपी अत्यन्त मूल्यवान वस्तु मिल सकती है तो क्या अन्य क्षुद्र कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती है?

जिस अमूल्य रत्न से त्रिलोक मिल सकता है उस रत्न से क्या सामान्य तुष नहीं मिल सकता है? अर्थात् निश्चय से मिल सकता है। इसलिये हितकांक्षियों को सतत् प्रयत्नशील होकर गुरूओं की सेवा करनी चाहिये। एक कवि ने कहा भी है -

हरिसु जनसु हेत कर, कर हरिजन सु हेत।
माल मूलक हरि देत है, हरि जन हरि ही देत॥

भगवान की सेवा करने से भगवान् धन सम्पत्ति दे सकते हैं, परन्तु गुरूओं की सेवा करने से गुरूजन, भगवान को ही दे देगें।

प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रान्ति हुई है, हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरू ही है। गुरू एक क्रान्तिकारी, सत्यशोधक, नवीन-नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरूष होते हैं। गुरू के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेक्जेण्डर (सिकन्दर) महान् बना अरस्तु के कारण। चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्विजयी बना गुरू कौटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी, छत्रपति बना गुरू समर्थ रामदास के कारण। मोहनदास, महात्मा गांधी बने रायचन्द्र जैन के कारण। इसी प्रकार ऐतिहासिक काल के महले ही राजा महाराजा, सम्राट भी गुरूओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्ध विद्या, कला कौशल, गुरूओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

गुरू बिना सर्वे भवन्ति पशुभिः सन्निभः।
गुरू के बिना मनुष्य पशु के सदृश्य है।
" गुरू बिना कौन दिखावे वाट, अवगड़ डोंगर घाट"

गुरू के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुःरूह, भयंकर जंगलघाट के समान है। उस को पार करने के लिये गुरू रूपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।

(3) स्वाध्याय –

आत्म कल्याण के लिये विवेक ज्योति प्राप्त करने के लिये सतगुरू के चरण सानिध्य में एवं उनके मार्गदर्शन में सत् साहित्यों का पठन करना स्वाध्याय है।

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यन्ध एव सः॥

अनेक संशय को छेद करने वाला परोक्ष पदार्थ को दर्शाने वाला एवं सब के चक्षु स्वरूप शास्त्र है जो शास्त्र अध्ययन नहीं करता है वह आँख वाला होते हुये भीअन्धे के सदृश्य है।

जिणवयणमोसहमिंण विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जर मरण वाहि हरणं खय करणं सव्व दुक्खाणं॥ 17॥
(अष्ट पाहुड, कुन्दकुन्दाचार्य)

जिनेन्द्र भगवान् की अमृतवाणी महान् औषधि है। इसके सेवन से काम, भोग, विषय रूपी विष की वांति (उल्टी) हो जाती है। यह अमृत तुल्य है। इस वचनामृत का पान करने से जन्म मरण व्याधि नष्ट हो जाती है और सम्पूर्ण दुःखों का विलय हो जाता है।

(4) संयम –

आत्मा की सुरक्षा के लिये, आत्म उन्नति के लिये दुष्ट इन्द्रिय एवं मन का सम्यक् निरोध करना संयम है।

(5) तप –

आकांक्षा का नियन्त्रण करना तप है। यह तप बाह्य एवं अन्तरंग के भेद से दो प्रकार का है, तप तपन(सूर्य) के समान समस्त अज्ञान, मोह, अविद्या अन्धकार को नाश करने वाला है।

(6) दान –

स्व-पर हित साधन के लिये चार प्रकार का दान देना चाहिये। दान के बिना दया नहीं है, दया के बिना धर्म नहीं है।

जो दान देता है वह दान देते हुये अंतरंग में एक अलौकिक आनन्द अनुभव करता है। दान से उसकी कीर्ति दशों दिशाओं में फैल जाती है, पाप कर्म का नाश होता है, सातिशय पुण्य वृद्धि को प्राप्त होता है। उस पुण्य से लोक में ख्याति, पूजा, वैभव, प्राप्त होता है। परलोक में भोगभूमि, स्वर्ग, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती की विभूति मिलति है। दान के चार प्रकार हैं- (1) आहार दान (2) औषधि दान (3) ज्ञान दान (4) वसतिका दान या अभय दान।

आहार दान –

'शरीरमाद्यम खलु धर्म साधनम्' धर्म साधन के लिये शरीर सर्वश्रेष्ठ एवं प्रथम साधन है। योग्य शरीर से धर्म साधनविशेष होता है। आहार के बिना शरीर दुर्बल हो जाता है। शरीर की रक्षा के लिये आहार चाहिये, आहार के बिना शरीर स्थिर नहीं रह सकता है। क्षुधा एक भंयकर रोग है। क्षुधारूप रोग से सम्पूर्ण शरीर जलने लगता है। शरीर दुर्बल हो जाता है। इन्द्रिय मन एवं अवयव शिथिल पड जाते हैं। जिसके कारण धर्म साधन विशेष नहीं हो पाता है। इसलिये क्षुधारुपी रोग को दूर करने के लिये भोजन रूपी आहार की नितान्त आवश्यकता है। सर्व आरम्भ, परिग्रह त्यागी साधु केवल भिक्षा से प्राप्त अन्न से ही उदर पोषण करता है। जिससे उनकी धर्म-साधना उत्तम रीति से चलती रहे। इसलिये सद्-गृहस्थों का पवित्र श्रेष्ठ कर्त्तव्य है कि ऐसे धर्मात्मा साधु पुरूषों को शुद्ध आहार दान दें, उनकी रक्षा करें जिससे धर्म की भी रक्षा होगी। धर्म की रक्षा से विश्व में सुख शान्ति फैलेगी।

दानं दुर्गति नाशाय शीलं सद्गति कारणं।
तपः कर्म विनाशाय भावना भव नाशिनी॥

दान से दुर्गति नाश है, शील से सद्गति मिलती है, तप से कर्म नाश होता है, भावना से संसार नाश होता है।

हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कंठस्य भूषणम्।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं, भूषणैः किं प्रयोजनम्॥

हस्तका भूषण सोने का कडादि नहीं है परन्तु दुसरों कों दान देना ही भूषण है। कंठका भूषण रत्नादि हार नहीं है परन्तु सत्य बोलना भूषण है कान का भूषण कुंडलादि नहीं है परन्तु साधुओं का आत्म उद्धारक उपदेश सुनना भूषण है। इसी प्रकार जो भूषण से अलंकृत है उसको भौतिक भारस्वरूप

भूषण से क्या प्रयोजन है ?

गजतुरंगसहस्त्रं गोकुलं भूमि दानम्।
कनकरजतपात्रं मेदीनी सागरान्तं ॥
सुरयुवति समानं कोटिकन्या प्रदानम्।
नहीं भवति समानं हयन्न दानं प्रधानं ॥

हजारों हाथी घोड़ा, गाय, भूमि स्वर्ण-पात्र, रजत-पात्र, सागर पर्यन्त पृथ्वी, अप्सरा के समान सुन्दरी कोटि कन्या प्रदान करना भी अन्न दान के समान नहीं है। अन्न दान प्रधान दान है क्योंकि भोजन से क्षुधा रोग मिटता है जिससे निराकुल रूप से धर्म साधना होती है, जिससे शाश्वतिक सुख मिलता है, शान्ति मिलती है।

सत्पात्र दानने भवेद्धनाढ्यो धनप्रकर्षेण करोति पुण्यम्।
पुण्याधिकारी दिवि देवराजः पुनर्धनाढ्यः पुनरेव त्यागी ॥

सत् पात्र दान से पुण्य संचय होता है। पुण्य के प्रभाव से धनी बनता है धन बढ़ने से पुनः दानादि करके पुण्य कार्य करता है। जिससे सातिशय पुण्य होता है जिससे स्वर्ग में देवराज इन्द्र बनता है। स्वर्ग से च्यूत होकर पुनः वैभवशाली धर्मात्मा मनुष्य बनता है। यहाँ पर पुनः त्याग करता है।

दिण्णई सुपत्तदाणं विसेसदो होई भोगसग्गमही।
णिव्वाणसुहं कमसो णिद्दिट्ठ जिणवरिंदेहीं ॥6॥ (रयणसार)

उत्तम साधु पुरुष को दान देने से नियम से भोग एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा उपक्रम से निर्वाण सुख भी मिलता है ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवान् ने दिव्य संदेश दिया है।

जो मुणि भुक्तवसेसं भुंजइ सो भुंजए जिणवदिटठ्।
संसार सार सोक्खं कमसो णिव्वाण वर सोक्खं ॥ (रयणसार)

जो भव्यजीव मुनिश्वरों को आहार दान के पश्चात् अवशेष अन्न को प्रसाद समझकर सेवन करते हैं वह संसार के सारभूत उत्तम सुखों को प्राप्त होता है और क्रम से मोक्ष को प्राप्त होते हैं ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इससे सिद्ध होता है कि अतिथियों को पहले आहार दान देकर उसके पश्चात ही सद्गृहस्थ भोजन करता है। गाँव में साधु नहीं होने पर भी आहार के समय में द्वारप्रेक्षण करना चाहिये अर्थात् साधु कहीं से आ रहे हैं या नहीं

इसकी प्रतिक्षा करनी चाहिये। यदि वे आ रहे हैं तो उनका स्वागत करके भोजन देना चाहिये।

गृहकर्मणापि निचित कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तनाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥ 14 ॥ (रत्नकरण्ड)

गृहस्थ के गृह सम्बन्धि आरम्भ, कृषि, व्यापार, भोजनादि, बनाने से जो पापरूपी कलंक लिप्त होता है उस कलंक को धोने के लिये गृह त्यागी अतिथि मुनियों को आदर पूर्वक दान से वे कर्म धुल जाते हैं जैसे रक्त से लिप्त कपड़ा पानी से धोने से स्वच्छ हो जाता है।

न वे कदरिया देव लोकं वृजन्ति,
बालाह वे न पसंसन्ति दानम्।
धीरोव दानं अनुमोद मानो,
तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥ (धम्मपद. बौद्ध.)

कंजूस आदमी देवलोक में नहीं जाते, मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते, पंडित लोग दान का अनुमोदन करते हैं। दान से ही मनुष्य लोक परलोक में सुखी होते हैं।

औषधि दान -

रोगिभ्यो भैषजं देयं, रोगो देह विनाशकः।
देहे नाशे कुतो ज्ञानं, ज्ञानाभावे न निवृत्तिः ॥

रोगियों को औषधि देना चाहिये, क्योंकि रोग शरीर का नाशक है। शरीर का नाश होने पर ज्ञान कैसे हो सकता है और ज्ञान के बिना निर्वाण कैसे प्राप्त हो सकता है।

इसलिये जो औषधि दान देता है वह शरीर को बचाता है तथा ज्ञान एवं निर्वाण प्राप्ति के लिये सहकारी कारण बनता है।

गुरूओं को, धार्मिक जनों को, रोगियों को, अहिंसात्मक प्रासुक शुद्ध औषधि देना औषधि दान है तथा शुद्ध औषधालय खोलना, रोगियों की सेवा करना, चिकित्सा करना, उनको सांत्वना देना, प्रिय वचन बोलना, साहस दिलवाना आदि औषधि दान में आता है।

ज्ञान दान -

यो ज्ञान दान कुरूते मुनीनां सदेवलोकस्य सुखानि भुक्ते।
राज्य च सत्केवलबोधलब्धि लब्ध्वा स्वयं मुक्तिपदं लभेत्॥

जो मुनियों के ज्ञान दान करता है वह स्वर्ग लोक के सुख भोगकर राज्य को प्राप्त करता है ओर केवलज्ञान को प्राप्त कर स्वयं मोक्षपद को प्राप्त करता है।

मुनियों को शास्त्र, ज्ञान उपकरण जैसे- कागज, कलम आदि देना ज्ञान दान कहा जाता है। सत्साहित्यों का प्रकाशन-वितरण करना भी ज्ञान दान है। स्वयं दूसरों को पढ़ाना, धार्मिक उपदेश करना, धार्मिक शिविर खोलना, धार्मिक स्कूल खोलना, उसके लियेआर्थिक सहयोग देना भी ज्ञान दान है।

अभय दान व वसतिका दान -

प्रत्येक जीव की रक्षा करना, गुरुओं का उपसर्ग, परिषह दूर करना, योग्य वसतिका (निवास गृह) देना पिच्छी-कमण्डलादि उपकरण देना, अभयदान वसतिका दान में गर्भित है।

जीव की रक्षा करना, उनको किसी प्रकार के कष्ट नहीं पहुंचाना बहुत बडा दान है क्योंकि उससे जीवन की रक्षा हुई, जीवन रक्षा से वह अन्य धार्मिक कार्य कर सकता है।

दाणु ण दिण्णउ मुणि वरउँ ण वि पुज्जिउर जिणणाहु।
पंच ण वंदिय परम गुरु किमु होसइ सिव लाहु॥

जो मुनिश्वरों को दान नहीं देता है, जिनेन्द्र भगवान कीपूजा नहीं करता है, पंच परमेंष्ठियों की वन्दना नहीं करता है, उसको शिव सुख साम्राज्य कैसे प्राप्त हो सकता है ?

दान फल

ज्ञानवान ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः।
अन्नदानात्सुखी नित्यं निर्व्याधि भेषजाद् भवेत्॥

ज्ञान दान से दानी ज्ञानवान बनता है, अभयदान देने से दानी निर्भय बनता है, अन्न दान से दानी सुखी रहता है, औषधि दान से दानी निरोग शरीर को धारण करता है।

आहार दान विधि

पड़गाहन -

1. मुनियों के लिये पडगाहन विधि -

हे स्वामिन् ! नमोस्तु,नमोस्तु,नमोस्तु अत्र, अत्र, अत्र, तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ आहार जल शुद्ध है।

2. आर्यिकाओं के लिये पड़गाहन विधि -

हे माता जी ! (आर्यिका श्री) वन्दामि, वन्दामि, वन्दामि, (या नमोस्तु 3) अत्र, अत्र, अत्र, तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ आहार जल शुद्ध है।

3. क्षुल्लक, क्षुल्लिका ऐलक के लिये अवगाहन विधि -

हे महाराज जी ! इच्छामि - 3, अत्र-3, आहार जल शुद्ध है।

नोट - यह पड़गाहन विधि जब तक साधु द्वार पर आकर नहीं रुके तब तक बोलते जाना चाहिये।

" पड़गाहन के बाद शुद्धि "

जब मुनिराज या माताजी की विधि मिलने के बाद आपके सामने खडे हो जाते हैं तब तीन प्रदक्षिणा देना, उसके बाद नमोस्तु मुनिराज (गुरुदेव) मन शुद्धि, वचन शुद्धि, कार्य शुद्धि, आहार जल शुद्ध है भोजन शाला में प्रवेश कीजिये कहें। भोजनशाला के पास गरम पानी से अपने पैरों को धोकर महाराज को भोजन गृह में प्रवेश करने के लिये अनुरोध करें। पुनः हे महाराज जी ! नमोस्तु उच्च आसन पर विराजमान होइये कहें। अनुरोध के पश्चात चौके में साधु को उच्चासन परबैठने के लिये आसन को उठाना चाहिये। साधु जिस स्थान को परिमार्जित कर लेते हैं वहां बिछाना चाहिये।

आसन पर विराजमान होने के बाद थाली में महाराज जी माताजी तथा क्षुल्लक व ऐलक जी के पैर गरम पानी में धोकर गन्दोधक सिर में लगावें।

विशेष- माताजी(आर्यिकाओं) के लिये वन्दामि, या नमोस्तु एवं क्षुल्लक ऐलक के लिये इच्छामि कहें। तथा क्षुल्लक ऐलक जी के पडगाहन के बाद

प्रदक्षिणा नहीं लगावें।

पूजा विधि

थाली में चन्दन से श्लोक पढते हुये बनाये।

रयणत्तयं च वंदे चउवीस जिणे सव्वदा वंदे।
पचगुरुणं वंदे, चारण चरण सदा वंदे॥

आह्वान- हे मुनिराज! अत्र अवतर अत्र अवतर अत्र अवतर तिष्ठ, तिष्ठ तिष्ठ मम सन्निहितो भव भव वष्ट स्वाहा। ऐसा कहकर पुष्प क्षेपण करें।

1. जल- ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वापामिति स्वाहा।

2. चंदन- ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामिति स्वाहा।

3. अक्षत- ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामिति स्वाहा।

4.पुष्प- ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामिति स्वाहा।

5.नैवेद्य- ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य निर्वपामिति स्वाहा।

6. दीप- ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामिति स्वाहा।

7.धूप- ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामिति स्वाहा।

8.फल- ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामिति स्वाहा।

अर्घ्य- उदक चन्दन तन्दुल पुष्पकै चुरु सुदीप सुधूप फलार्घकैः।
धवल मंगल गान रवाकुले मम गृह मुनिराज महंयजे॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिराज चरणेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घ निर्वपामिति स्वाहा।

शांतिधारा, परिपुष्पांजलि क्षेपण करें एंव पंचाग नमस्कार करें। साधु के चौके में आने से पहले बर्तन में भोजन परोसकर के नहीं रखना चाहिये। पूजा के बाद थाली एवं कटोरी में रोटी दाल सब्जी आदि परोसकर पहलें दिखायें। भोज्य पदार्थ हाथ में लेकर नहीं दिखाना चाहिये। किसी ऊंचे पाटे पर रखकर दिखाना चाहिये। थाली और अन्य बर्तनों के पास मुंह ले जाकर नहीं बोलना चाहिये। अन्यथा थूक भोजन में गिर जाता है।

"आहार देने के लिये शुद्धि"

हे स्वामिन्! नमोस्तु मन शुद्धि, वचन शुद्धि काय शुद्धि आहार जल शुद्ध है। अँजुलि जोडकर मुद्रिका छोडकर भोजन ग्रहण कीजिये। फिर नमोस्तु कीजिये। महाराज के मुद्रिका छोडने के बाद हाथ धुलावें।

भोजन विधि एवं विशेष ध्यान देने योग्य बातें -

महाराज श्री के खडे होकर मंत्र बोलने के बाद पानी देने के बाद दूध दें दूध के बाद पित्तशामक मिष्ठान्न व गरिष्ठ मेवे दें। इसके बाद भोजन दें। मध्य में थोडा-2 पानी भी दें। दूध के खट्टी चीज एवं खट्टी चीज के बाद दूध नहीं दें। फलरस और फल के बाद पानी न दें। तथा पानी के बाद फलरस न दें। दूध के साथ या आगे या पीछे साग (भाजी) और नमकीन नहीं देना चाहिये। फल बनाने के पहले फलों को स्वच्छ पानी से धोवें। बनाने के बाद धोने से विटामिन नष्ट हो जाते हैं। खांसी हो जाती है एवं गला खराब हो जाता है। साबूत फल एवं बीज सहित फल नहीं देना चाहिये।

आहार क्रिया के समय हाथ पैर बर्तन आदि को धोने के लिये शुद्ध गरम जल का ही प्रयोग करना चाहिये। आहार देते समय हाथ को शरीर या अशुद्ध वस्तु से स्पर्श नहीं करना चाहिये। साधु के चौके में जाने के बाद फल बनाना, भोजन बनाना आदि न करें। भक्ति करके अँजुलि जोडनेके बाद पानी भोजनादि परोसना चाहिये। एक कायोत्सर्ग (9 बार णमोकार मंत्र बोलने जितने समय) तकहाथ खाली हने से साधु भोजन त्याग कर देते हैं। बहुत कम या बहुत अधिक आहारादि न परोसें। भोजन देते समय बार बार यह दूं

वह दूं, ऐसा पूंछ-2 कर नहीं देना चाहिये। अर्थात् जिस भोजन का त्याग साधू का नहीं है। उस भोजन को जब तक साधू लेवें तब तक देते रहें। या अन्य भोजन देना है तो स्वयंमेव विवेक पूर्वक विधि पूर्वक देना चाहिये।

आहार देते समय छीना झपटी, हापा धापी, गडबड, असावधानी व शोर शराबा, कलह, तनाव, अशांत, जल्दबाजी आदि नहीं होना चाहिये। विशेष आवश्यकता बिना अपना चौका छोडकर दूसरों के चौके में नहीं जाना चाहिये। अनेक आहार दाता हो तो अलग-2 भोजन की वस्तु लेकर रहना चाहिये। उस चीज का शोधन करने के बाद आहार के लिये देना चाहिये। न कि एक ही वस्तु को लेकर रहना चाहिये।जिस बर्तन में साधु का झुठन गिरता है उसमें मक्खी आदि को बैठने नहीं देना चाहिये। आहार दाता के हाथों में उंगलियों पर लम्बे-2 नाखुन नहीं होना चाहिये। हाथ गन्दा नहीं होना चाहिये अच्छी तरह शरीर शुद्धि होना चाहिये। हाथ गन्दा नहीं होना चाहिये। अच्छी तरह शरीर शुद्धि करना चाहिये। एवं दन्त मंजन करके मुँह शुद्धि करना चाहिये, जिससे शरीर एवं मूँह से दुर्गन्ध ना आवे। चौका में प्रत्येक बर्तन को गर्म पानी से स्वच्छता से धोकर एवं चौका के कपडों से पोंछकर काम में लाना चाहिये।

चौका (भोजनशाला) शुद्धि -

चौका प्रकाशयुक्त, सूखा, जीवों से रहित हो, ऊपर से स्वच्छ चँदेवा तना हो, दुर्गन्ध से रहित प्रशस्त हो।

भोजन शुद्धि - कुंए का पानी छानकर लायें उसी समय छन्ने की जीवाणि को कुए में डालें। उस छने जल को गरम करें एवं उससे भोजन बनावें हाथ की चक्की का आटा, शुद्ध दूध, मर्यादित घी होना चाहिये।

आहार देने वालों की शुद्धि-

पिण्ड शुद्धि, जाति कुल परम्परा शुद्ध हो। स्नान करके शुद्ध कपडा पहनकर के भोजन दें तथा पुरूष जनेऊ धारण करें। लिपिस्टिक, नेलपालिश, पाउडर, हिंसात्मक सौंदर्य प्रसाधन सामग्रियों का प्रयोग न करें।आहार देते समय काला कपडा, लाल, गीला, फटा, रेशमी, ऊनी आदि प्रकार के वस्त्र न पहनें। पुरूष वर्ग धोती दुपट्टा एवं स्त्री वर्ग साडी ब्लाउज पहनें। रजस्वला स्त्री चौका में न आवे तथा न चौके की वस्तु को स्पर्श करें।

सप्त व्यसन का त्याग - आहार देने वालों को अण्डा, माँस, मद्य, धूम्रपान का जीवन पर्यन्त त्याग अनिवार्य है। चार महीना से अधिक गर्भवती स्त्री आहार न दें।

त्याग - आलू, लहसुन, मूली, गाजर, प्याज आदि जमीकन्द का तथा रात्रि भोजन, अशुद्ध भोजन, अशुद्ध पानी, होटल की चीजें गोभी आदि का शक्ति अनुसार त्याग करें। छानकर पानी पीवें, देव दर्शन नित्य करें। जनेऊ धारण करें।

आहार दान का फल -

आत्म विशुद्धि, धर्म प्रेम, गुरू-सेवा लोभ की कमी, यश-प्राप्ति होती है एवं अन्त में मोक्ष प्राप्ति होती है।

अन्तराय - केश (बाल), मरा हुआ जीव, सचित्त बीज, नाखून, चर्म रक्त, मांस आहार में आने पर, मद्य मांस देखने पर, शव देखने पर, अग्नि बुझने पर मांस पक्षी-पशु भक्षी, मनुष्य रजस्वला स्त्री के छुने पर बर्तन गिरने पर, मनुष्य को चक्कर आकर गिरने पर त्यागी हुई चीज एवं भक्षण होने पर करूण रोने की आवाज सुनने पर दूसरों को मारने पर मार काट आदि शब्द सुनने पर, पंचेन्द्रिय जीव, चुहा-बिल्ली आदि पैर के बीच से निकलने पर तथा और भी अनेक कारण से अन्तराय हो जाता है।

कुछ विशेष नियम :-

हम विशेषत: बच्चों को सुसंस्कारित करने के लिये बच्चों से सप्त व्यसनादि सामान्य त्याग करवा करके उनसे आहार लेते हैं। संघ के साधु आहार में मिर्ची, बेसन, तेल, मटर, खटाई(दही, मट्ठा, इमली, अमचूर) उडद,पम्प का पानी, अधपकी ककडी तथा सेंगरी आदि नहीं लेते हैं। गर्म किया हुआ ठण्डा पानी एवं ठण्डा दूध लेते हैं।

विनती

(कविवर बुधजन जी)

प्रभु पतित-पावन मैं अपावन चरण आयो, शरण जी।
यों विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरन जी॥
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्ध सेती निज न जान्यो भ्रम गिन्यो हितकार जी॥

भव-विकट-वन में करम वैरी, ज्ञान, धन, मेरो हरयो।
तब इष्ट भूल्यो, भ्रष्ट होय अनिष्ट गति धरतो फिरयो॥
धन घड़ी यो धन दिवस यो ही धन जनम मेरे भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो दरश प्रभुजी को लख लयो॥
छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, द्रष्टि नासा पै धरै।
वसु प्रातिहार्य अनंत गुण युत कोटि रवि छवि को हरे॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो मनु रंक चिंतामणी लयो॥
मैं हाथ जोड नवाय मस्तक, वीनऊं तुम चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रैलोक्य पति जिन सुनहुं तारन तरन जी॥
जांचू नहीं सुरवास पुन नर राज परिजन साथ जी।
बुध जांचहुं तव भक्ति भव भव दीजिये शिवनाथ जी॥

आलोचना पाठ

हे नाथ मैने प्रमाद वश हो दोष भारी जो किये।
इसीलिये इस पाप ने हैं दुःख मुझको बहु दिये॥
अब चरण आया हूं तुम्हारी दोष मेरे दूर हों।
कर दरश प्रभु आपका मिथ्यात्व मेरा नाश हो॥
संकट सहूँ निर्भय बनूं आशिष यदि हो आपका।
भवदधि तर जाऊंगा पा जिन चरण नौका महा॥
गृहस्थ सम्बन्धित क्रिया में मुझसे हुई हिंसा अहा।
एक इंद्रिय से पंचेन्द्रिय पर न की बिल्कुल दया॥
स्वार्थ वश मैने न जाने पाप कितना है किया।
मन, वचन और काय से मैं मांगता सबसे क्षमा॥
इन्द्रियो का दास बन मैं हूं गया इनसे ठगा।
इसीलिये यह पाप मुझ को दे रहा क्षण क्षण दगा॥
देव शास्त्र गुरू की भक्ति मैं सदा करता रहूं।
शक्ति दो हे नाथ मुझको मैं भी दिगम्बर मुनि बनूं॥

मेरी भावना

जिसने राग द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।

सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन हरी हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो॥
विषयों की आशा नहिं जिनके साम्यभाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो निश दिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुख समूह को हरते हैं॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में, यह चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊं किसी जीव को झूंठ कभी नहीं कहा करूं।
परधन वनिता पर न लुभाऊं संतोषामृत पिया करूं॥
अहंकार का भाव न रक्खूं नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं॥
रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं॥
मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुःखी जीवों पर मेरे उर से करूणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥
गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावें॥
कोई बुरा कहे या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आये।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पग डिगने पाये॥
होकर सुख में मग्न न फूलें, दुःख में कभी न घबरायें।
पर्वत नदी श्मशान भयानक अटवी से नहीं भय खावें॥
रहे अडोल अकम्प निरन्तर यह मन दृढ़ तर बन जावे।

इष्ट वियोग अनिष्टयोग में सहन शीलता दिखलावें ॥
सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावें।
वैर पाप अभिमान छोड़कर नित्य नये मंगल गावें ॥
घर घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान चरित्र उन्नत कर अपना मनुज जन्म फल सब पावें ॥
ईति भीति व्यापे नहीं जग में वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैलै, प्रजा शांति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करें ॥
फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं कोई मुख से कहा करें ॥
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से सब दुःख संकट सहा करें ॥

बारहभावना

(दौलतराम कृत)

मुनि सकल व्रति बड़भागी भव भोगन तै वैरागी।
वैराग्य उपावन मॉही चिन्तै अनुप्रेक्षा भाई (1)
इन चिंत्तत सम सुख जागे जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जव ही जिय आतम जानै तब ही जिय शिव सुख ठानै (2)
जोवन गृह गोधन नारी हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई सुरधनु चपला चपलाई (3)
सुर असुर खगाधिप जेते मृग ज्यों हरि काल दलेते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई मरते न बचावै कोई (4)
चहुँगति दुःख जीव भरे हैं परिवर्तन पंच करै है।
सबविधि संसार असारा यामै सुख नाहि लगारा (5)
शुभ अशुभ करम फल जेते भोगे जिय एकही ते ते।
सुत दारा होय न सीरी सब स्वारथ के हैं भीरी (6)
जल पय ज्यों जिय तन मेला पै भिन्न भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा क्यों हो इक मिल सुत रामा (7)
पल रूधिर राध मल थैली कींकस वसादि मैली।

नव द्वार बहैं घिनकारी अस देह कतै किम यारी (8)
जो जोगन की चपलाई तातें है आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे बुद्धिवन्त तिन्हैं निरेरे (9)
जिन पुण्य पाप नहि कीना आतम अनुभव चित दीना।
तिनहीं विधि आवत रोके संवर लहि सुख अब लोके (10)
तिन काल पाय विधि झरना तासौ निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै सो ही शिव सुख दरसावै (3)
किनहूं न करैं न धरैं को षटद्रष्य मयी न हरैं को।
सो लोकमाहि बिन समता दुःख सहै जीव नित भ्रमता (12)
अतिंम ग्रीवक लौ की हद पायो अनंत विरिया पद।
पर सम्यक ज्ञान न लाधो दुर्लभ निज में मुनि साधो (13)
जो भाव मोह ते न्यारे दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै तब ही सुख अचल निहारै (14)
सो धर्म मुनिन कर धरिये तिनकी करतूति उचरिये।
ताकूं सुनिये भवि प्राणि अपनी अनुभूति पिछानी (15)

बारह भावना

कविवर भूधरदास जी कृत

दोहा-

राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार (1)
दल बल देवी देवता मात पिता परिवार।
मरती विरियां जीव को कोई न राखनहार (2)
दाम बिना निर्धन दुःखी तृष्णावश धनवान।
कहूं न सुख संसार में जब जग देख्यो छान (3)
आप अकेला अवतरै, मरे अकेला होय।
यूं कबहूं इस जीव को, साथी सगा न कोय (4)
जहां देह अपनी नहीं तहां न अपना कोय।
घर संपति पर प्रगटये, पर है परिजन लोय (5)
दिपै चाम चादरमढी हाड पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह (6)

सोरठा–

मोह नींद के जोर जगवासी घूमैं सदा।
कर्म चोर चहूं ओर, सरवस लूटै सुध नहीं॥
सतगुरू देय जगाय मोह नींद जब उपशमें।
तब कछु बनै उपाय, कर्म चोर आवत रूके॥

दोहा –

ज्ञान-दीप नप तेल भर धर शोधे भ्रम छोर॥
या विधि बिन निकसै नहीं बैठै पूरब चोर॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार॥
प्रबल पंच इन्द्री विजय धार निर्जरा सार॥
चौदह राजु उतंग नभ लोक पुरूष संठान॥
तामें जीव अनादितें भरमत है बिन ज्ञान॥
जांचे सुर तरू देय सुख, चिंतत चिंतारैन॥
बिन जांचे बिन चिंतये, धर्म सकल सुख देन॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान॥
दुर्लभ है संसार, में एक यथारन ज्ञान॥

आरती

ॐ जय केवलज्ञानी, हो स्वामी जय केवलज्ञानी
आरती करते सब मिल बन जायें ज्ञानी।ॐ जय....
अतिशय चौतीस के तुम धारी, हित उपदेशी महान हो स्वामी....
वीतराग अरहंत प्रभु जी, करना भव से पार ॐ जय....
अष्ट कर्म से रहित जिनेश्वर, गुण अनंत धारी हो स्वामी....
ज्ञाता दृष्टा सिद्ध प्रभु जी, वर ली शिव नारी ॐ जय....
रत्नत्रय के धारी गुरूवर श्रमण संघ नायक हो स्वामी....
पंचाधारी धारक सूरी करते धर्म प्रचार ॐ जय....
अज्ञान तिमिर को हरने वाले मोक्षपुरी गामी हो स्वामी....
ज्ञान किरण विकसाते हो, पाठक ज्ञानी ॐ जय....
अट्ठ बीस गुणों के धारी, करते आत्मध्यान हो स्वामी....

सुर नर किन्नर ध्यावें, ऐसे तुम ऋषिराज ॐ जय....
विषय विकार मिटाओ शरण पड़ा तेरी हो स्वामी....
'राज' मुक्ति को पाये छूटे भव फेरी ॐ जय....

महावीर भगवान् की आरती

आरती श्री महावीर तुम्हारी!
वर्द्धमान अतिवीर तुम्हारी!!
कुण्डलपुर में जन्म तुम्हारा! सिद्धार्थ घर हो उजियाला!
प्रियकारिणी सुत सुखकारी!! आरती श्री....
धन्य हुआ वह दिन था प्यारा!
भव्यों को जब मिला सहारा!
समोशरण की शोभा न्यारी!!आरती श्री....
पावापुर में मोक्ष पधारें!
सुर नर सारे अति हर्षाये!
झूम झूम के नाचे भारी!! आरती श्री....
हम सब शरण तिहारी आये!
मन वच तन से शीश झुकायें!
'राज श्री' भी शरण तिहारी!! आरती श्री....

पार्श्वनाथ भगवान् की आरती

(तर्ज:- मन डोले मेरा तन....)

प्रभु पारस की दु:ख हारक की ले मंगल दीप जलाय हो।
मैं आज उतारुँ आरतियाँ॥
हमने निज नयनों से देखी मूरत आज अनोखी।
मोक्ष महल के जाने को यह राह बताती चोखी प्रभु जी राह.
फणिमण्डित की प्रतिबिम्बन की मनही शुभ दीप प्रजाल हो॥ मैं
चिंतामणि पारस प्रभु जी की मिलकर सब जय बोलो।
गान नृत्य से भक्ति बड़ाकर आज हृदय पट खोलो॥
सब मिलकर के गुण गा करके हाथों में दीप अपारलें॥ मैं आज....
पुण्य उदय से जन्म लिया है उत्तम कुल में आकर।
'क्षमा' का मन अति हर्ष भरा है तीन भुवन पति पाकर॥ प्रभू....

शिवगामी की जगनामी की मणिमय घृत दीप प्रजाल हो। मैं आज....

प्रभु कीर्तन

(तर्ज:- बाबुल की दुआएँ....)

हर क्षण की ये जाती घडियों में मिलती है तुम्हारी सीख मुझे।
नहीं मांग रहा कुछ भी मैं तो दर्शन की है बस चाह मुझे॥

मेरे अन्तर्मन में आके कभी, जीवन में उजाल कर देना।
घनघोर अंधेरे मे हूं मैं तो वहां ज्ञान उजाला कर देना ।
तुम इच्छापुरी करते हो अब क्यों है भला इन्कार मुझे।
हर क्षण की....

कई बार तुम्हारा दर्श मिला, पर मूल्य न उसका जान सका।
विषय कषायों में उलझा, पर को ही अपना मान रहा
जिन से निज दर्शन जाऊँ, इस बार करो स्वीकार मुझे॥
हर क्षण की....

आकर के सहारा देना प्रभु, मेरी नैया पार लगा देना।
मैं पाल महाव्रत मोक्ष चलूं मुझे इतनी शक्ति दे देना।
'गुप्ति' से मुक्ति मिलती है तेरी वाणी पर विश्वास मुझे॥
हर क्षण की....

आरती

(तर्ज:- इंजन की सीटी में....)

मन्दिर की घंटी में मन डोले -2
सगळा चालो से भाया मन्दिर होले-2
बडे सबेरे घंटा बाजे और नगाडा बाजे
बच्चा बच्चा पूजन करता, झुम झुम के नाचे
होळे होळे....
द्रव्य भाव मय पूजा चाले करे जगत कल्याण
कर्मों की अठै शुद्धि चले कर दे निज उद्धार
होळे होळे....
धर्म देश ओर विश्व शांति कर दे मां की पूजन
'गुप्ति' से मुक्ति मिल जाये यहीं करूं मै चिन्तन
सगळा चालो रे....